पढ़ें और सीखें योजना

संगीत का लहराता सागर

विष्णु दिगंबर पलुस्कर

दर्शन सिंह नरूला

विभागीय सहयोग
हीरालाल बाछोतिया

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
सितम्बर 1994
भाद्र 1916
PD 15T–RP

प्रकाशन सहयोग

सी.एन. राव *अध्यक्ष,* प्रकाशन विभाग

प्रभाकर द्विवेदी *मुख्य सम्पादक*　यू. प्रभाकर राव *मुख्य उत्पादन अधिकारी*
पूरन मल *सम्पादक*　डी. साई प्रसाद *उत्पादन अधिकारी*
राजपाल *सहायक सम्पादक*　विकास व. मेश्राम *सहायक उत्पादन अधिकारी*
राजेश पिप्पल *उत्पादन सहायक*

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैम्पस	सी.डब्ल्यू.सी. कैम्पस	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्ल्यू.सी. कैम्पस
श्री अरविंद मार्ग	चितलापक्कम, क्रोमपेट	डाकघर नवजीवन	32, बी.टी. रोड, सुखचर
नई दिल्ली 110016	मद्रास 600064	अहमदाबाद 380014	24 परगना 743179

आवरण : कर्ण कुमार चड्ढा

रु. 11.50

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा शगुन कम्पोज़र्स, 92-बी, गली नं. 4, कृष्णा नगर, सफदरजंग इन्क्लेव, नई दिल्ली 110029 द्वारा लेजर कंपोज होकर जे. के. ऑफसेट प्रिंटर्स, 315, गली ग्रहिया, जामा मस्जिद, दिल्ली 110006 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

विद्यालय शिक्षा के सभी स्तरों के लिए अच्छे शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण की दिशा में हमारी परिषद् लगभग तीस वर्षों से कार्य कर रही है। हमारे कार्य का प्रभाव भारत के सभी राज्यों और संघशासित प्रदेशों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से पड़ा है और इस पर परिषद् के कार्यकर्ता संतोष का अनुभव कर सकते हैं।

किन्तु हमने देखा है कि अच्छे पाठ्यक्रम और अच्छी पाठ्यपुस्तकों के बावजूद हमारे विद्यार्थियों की रुचि स्वतः पढ़ने की ओर अधिक नहीं बढ़ती। इसका एक मुख्य कारण अवश्य ही हमारी दूषित परीक्षा-प्रणाली है जिसमें पाठ्यपुस्तकों में दिए गए ज्ञान की ही परीक्षा ली जाती है। इस कारण बहुत ही कम विद्यालयों में कोर्स के बाहर की पुस्तकों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। लेकिन अतिरिक्त पठन में बच्चो की रुचि न होने का एक बड़ा कारण यह भी है कि विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए कम मूल्य की अच्छी पुस्तकें पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध नहीं हैं। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में इस कमी को पूरा करने के लिए कुछ काम प्रारंभ हुआ है पर यह बहुत ही नाकाफ़ी है।

इस दृष्टि से परिषद् ने बच्चों की पुस्तकों के रूप में लेखन की दिशा में महत्वाकांक्षी योजना प्रारंभ की है। इसके अंतर्गत, 'पढ़ें और सीखें' शीर्षक से एक पुस्तकमाला तैयार की जा रही है जिसमें विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए सरल भाषा और रोचक शैली में निम्नलिखित विषयो पर बड़ी संख्या में पुस्तकें तैयार की जा रही है :

क. शिशुओं के लिए पुस्तकें

ख. कथा-साहित्य

ग. जीवनियाँ

घ. देश-विदेश परिचय

ङ. सांस्कृतिक विषय

च. वैज्ञानिक विषय

छ. सामाजिक विज्ञान के विषय

इन पुस्तकों के निर्माण मे हम प्रसिद्ध लेखको, अनुभवी अध्यापकों और योग्य कलाकारो का सहयोग ले रहे हैं। प्रत्येक पुस्तक के प्रारूप पर भाषा, शैली और विषय-विवेचन की दृष्टि से सामूहिक विचार करके उसे अंतिम रूप दिया जाता है।

परिषद् इस माला की पुस्तकों को लागत-मूल्य पर ही प्रकाशित कर रही है ताकि ये देश के हर कोने में पहुँच सकें। भविष्य में इन पुस्तकों को अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने की भी योजना है।

हम आशा करते है कि शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के क्षेत्र मे किए गए कार्य की भाँति ही परिषद् की इस योजना का भी व्यापक स्वागत होगा।

प्रस्तुत पुस्तक के लिए डॉ. दर्शन सिंह नरूला ने हमारा निमंत्रण स्वीकार किया जिसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं। जिन-जिन विद्वानों, अध्यापकों और कलाकारों से इस पुस्तक को अंतिम रूप देने में हमे सहयोग मिला है उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

हिंदी मे 'पढ़े और सीखें' पुस्तकमाला की 'यह योजना अब सामाजिक विज्ञान एव मानविकी शिक्षा विभाग के अध्यक्ष 'प्रोफेसर अर्जुन देव के मार्ग-दर्शन मे चल रही है। उनके सहयोगियों में डॉ. रामजन्म शर्मा, डॉ. सुरेश पांडेय, डॉ. हीरालाल बाछोतिया और डॉ. अनिरुद्ध राय सक्रिय सहयोग दे रहे हैं। योजना के संचालन में डॉ. बाछोतिया विशेष रूप से सक्रिय रहे हैं। मैं अपने सभी सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद और बधाई देता हूँ।

इस माला की पुस्तकों पर बच्चों, अध्यापको और बच्चों के माता-पिता की प्रतिक्रिया का हम स्वागत करेंगे ताकि इन पुस्तकों को और भी उपयोगी बनाने में हमें सहयोग मिल सके।

अशोक कुमार शर्मा

निदेशक

नई दिल्ली — राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद

प्रस्तावना

मेरे 'गुरुजी' (पंडित भीमसेन जी) के गुरुजी (श्री रघुनाथ राव कुलकर्णी) श्री विष्णु दिगंबर पलुस्कर के शिष्य थे। ग्वालियर घराने की महान संगीत-परंपरा के वे आधार स्तंभ थे। पंडित विष्णु दिगंबर जी के तीसरी पीढ़ी के शिष्य आज भी संगीत सेवा में निरंतर लगे हुए है।

अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय मंडल, बंबई के अंतर्गत आज भी तीन सौ से ऊपर परीक्षा केन्द्र व शिक्षा केन्द्र हैं। 15 हजार से अधिक विद्यार्थी वर्ष में दो बार संगीत परीक्षाएँ देते है। गांधर्व-मंडल की उपाधियों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.) से मान्यता प्राप्त है। गांधर्व-मंडल के सैकड़ों पदवीधारी स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों में संगीत शिक्षा दे रहे हैं। यह सब पंडितजी की तपस्या का फल है।

पडितजी के शिष्यों की गायकी को सुनने का अवसर मुझे बचपन में ही मिला। यह गायकी पं. ओंकार नाथ ठाकुर, विनायक राव पटवर्धन, नारायण राव व्यास तथा दत्तात्रेय पलुस्कर की थी जिसे सुनकर मैं इतना प्रभावित हुआ कि संगीत सीखना आरंभ कर दिया। जवानी में पंडित विष्णु दिगंबर जी का संपूर्ण जीवन चरित्र पढ़ा तो, निर्णय ले लिया कि 'संगीत की पाठ्यपुस्तकों के अभाव की पूर्ति' करने में अपना जीवन लगा दूँगा। आज जो लिख रहा हूँ वह सब उसी प्रेरणा के फलस्वरूप है।

इस पुस्तक में महान संगीत-साधक पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर जी का जीवन-परिचय दिया गया है। उनका जन्म तो महाराष्ट्र में हुआ था, किंतु उनकी ख्याति, सारे भारत में फैल चुकी थी। अनाथ हो गये, आँखों की रोशनी कम हो गई, अनेकों कठिन परिस्थितियों का सामना किया परंतु साहस नहीं छोड़ा। प्रत्येक स्थिति पर काबू पाया। वास्तव में उनका जीवन, संगीत का लहराता हुआ सागर है।

उन्होने अपना संपूर्ण जीवन संगीत कला के लिये अर्पित कर दिया। अनेकों संगीत ग्रंथ लिखे, व प्रकाशित किए। अनेको संगीत महाविद्यालयों की स्थापना की। संगीत पत्रिका का

प्रकाशन आरंभ किया। पूरे देश में संगीत के लिए भ्रमण किया। पचास से ऊपर नगरों में संगीत प्रदर्शन किया। सौ से ऊपर शिष्य तैयार किए, जिन्होंने संगीत प्रचार के लिए अपना जीवन लगाया। अखिल भारतीय स्तर के संगीत आयोजन, सम्मेलन व सेमिनार किए। क्या किसी एक व्यक्ति द्वारा यह सब संभव है ? इसके पीछे कौन था ? यही सब इस पुस्तक का विषय है।

कब ! क्यों ! और कैसे ! यही उत्सुकता हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, इन्ही उद्देश्यों से पुस्तकें प्रकाशित करती है। 'पढ़ें और सीखें' योजना पाठकों को अध्ययन की प्रेरणा देती है।

डॉ. हीरालाल बाछोतिया व डॉ. सुरेश पांडे के संयोजन में, लेखक कार्य गोष्ठियां होती रही हैं जिनमें यह 'साहित्य-रचना' विचार-विमर्श के उपरांत छापी जाती है। इन गोष्ठियों से जो बाल-साहित्य को लाभ हो रहा है, उसके लिये वे सभी लोग बधाई के पात्र हैं जो दिन-रात, इस राष्ट्रीय-महत्त्व के कार्य में लगे हुए हैं। इसमें लेखक का प्रयास कहाँ तक सफल हुआ है, यह तो इस पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् ही बताया जा सकेगा।

दर्शन सिंह नरूला
अध्यक्ष, संगीत विभाग
डी.ए.वी. कालेज, मलोट

अनुक्रम

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ :

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा ? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा ? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है ?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

1

विष्णु दिगंबर पलुस्कर–जीवन परिचय

"वेदों में, मैं सामवेद हूँ।"

भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है अपने बारे में। उन्होंने कहा कि "जहाँ मुझे गायन द्वारा याद किया जाता है, वहीं मेरा निवास स्थान है।"

अब यह कहने की आवश्यकता नहीं कि हमारी संस्कृति में संगीत की क्या महिमा है? इस महिमा को पुनः प्रतिष्ठा दिलाने का जो काम पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर ने किया, वह अद्वितीय है। सचमुच में, वे संगीत के लहराते सागर थे। ऐसा सागर जिसकी अनुगूँज आज भी संगीत जगत में सुनाई पड़ती है। यह गूँज, कैसे गूँज बनी? यह भी एक घटना है।

बात सन् 1887 की है। करूंदवाड के राजमहल में "दत्तजयंती" धूमधाम से मनाई जा रही है। राजकुमार अपने बाल साथियों के साथ आतिशबाजी में मगन थे।

मिराज से 14 मील दूर करूंदवाड रियासत थी। वहाँ नरसो वाची वाड़ी एक स्थान है। यहाँ पर भगवान दत्तात्रेय का मदिर है। यह मंदिर बहुत से लोगों की श्रद्धा का केन्द्र है। वहाँ के लोग भगवान दत्तात्रेय की पूजा करते हैं। इस मंदिर में दूर-दूर से लोग आते हैं। पर दत्तजयंती पर यहाँ बड़ी भीड़ थी।

करूंदवाड़ के राजमहल में दत्तात्रेय जयंती की बड़ी चहल-पहल भी थी। सारा महल रोशनी से जगमगा रहा था। खुशियाँ मनाई जा रही थीं। बच्चे तरह-तरह

की आतिशबाजी चला रहे थे। बच्चों में राजकुमार नाना साहिब भी थे। राज परिवार के और भी बच्चे थे। उनसे जुड़े दरबारियो व कर्मचारियो के बच्चे भी थे। आतिशबाजी चलाते-चलाते राजकुमार को एक शरारत सूझी। एक अनार को गोला बनाकर उसने एक बच्चे को दे दिया। अनार का गोला इसलिए बनाया ताकि बच्चा अनार न चला सके। इस पर राजकुमार उस बच्चे को चिढ़ाकर मजा ले सके। वह बच्चा, अनार को बार-बार जलाने की कोशिश करता और अनार चलता ही नहीं था।

अनार चलता नहीं। राजकुमार ठहाका लगाता। उस बच्चे को चिढ़ाते। बच्चे ने अनार को सुलगाने के लिए, उसके पास जाकर उस पर फूंक मारी। कई बार फूंक मारने पर अनार अचानक जल उठा। अचानक जल उठने से, बारूद की चिंगारियां निकलीं। चिंगारियों ने बच्चे का मुंह झुलसा दिया। वह चीखने चिल्लाने लगा। बच्चों में भगदड़ मच गई। राजा को खबर लगी। राजवैद्य को बुलाया गया। राजवैद्य ने इलाज किया।

ऐसा कैसे हुआ ? राजा ने बच्चों से पूछा। बच्चों ने बताया कि राजकुमार ने अनार को गीला बना दिया था। राजा को बहुत दुःख हुआ। राजा ने बालक की चिकित्सा की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली, क्योंकि यह सब राजकुमार की गलती से हुआ था। राजकुमार भी बहुत पछताया हालांकि राजकुमार भी बालक था, उसने यह शरारत खेल के लिए की थी। उसे क्या पता था कि नतीजा इतना भयंकर भी हो सकता है। लेकिन अब क्या हो सकता था। हां! राजकुमार ने ऐसी शरारत फिर कभी न करने की प्रतिज्ञा अवश्य ले ली।

राजवैद्य के उपचार से उस बालक को लाभ तो पहुंचा लेकिन उसकी आँखों को ज्यादा नुकसान हुआ था। जिसका राजवैद्य के पास इलाज नहीं था। इलाज के लिए बच्चे को मिराज नगर में भेजा गया। महाराजा दाजी साहब ने उसकी सारी व्यवस्था, मिराज नगर में महाराज गंगाधर राव बाला साहब के यहाँ कर दी।

गंगाधर राव महाराज इनके रिश्तेदार थे। महाराज गंगाधर राव उस बालक को डॉ. त्र्यंबक राव भड़भड़े के पास ले गए। डॉ. त्र्यंबक राव वहाँ के हस्पताल में मेडीकल आफिसर थे। वे नेत्र रोगों के जाने-माने विशेषज्ञ थे।

यह बालक गाना बहुत अच्छा गाता था। महाराजा दाजी साहब ने यह बात मिराज के महाराजा को बताई। मिराज के महाराजा ने यही बात जब डॉ. त्र्यंबक राव को बताई तो डॉ. साहब ने बच्चे से कहा कि मुझे भी अपना गाना सुनाओ। पहले तो वह बालक झिझका। फिर डॉ. साहब ने जब दुबारा कहा और महाराजा मिराज ने भी कहा, "सुना दो ना," जब डॉ. साहब कह रहे हैं तो "एक गाना सुना दो।" बालक ने गाना आरंभ किया। बालक का मधुर भावपूर्ण गाना सुन कर डॉ. साहब दंग रह गए। इतनी छोटी उम्र में इतना सुंदर कंठ ?

जब भी बच्चा डॉ. साहब के पास इलाज के लिए आता तो वह गाना ज़रूर सुनते। उन्हें बहुत अच्छा लगता।

डॉक्टर के उपचार से धीरे-धीरे बालक का चेहरा तो ठीक हो गया लेकिन आँखों में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। अंत में उन्होंने उससे कहा कि तुम्हारी दृष्टि, अब साधारण रूप से तो ठीक है, जिससे तुम "रोज-मर्रा" के काम तो कर सकते हो पर पढ़ाई-लिखाई नहीं। तुम, बड़े अक्षरों में लिख-पढ़ सकते हो परंतु, पुस्तकों का विशेष अध्ययन नहीं कर पाओगे। इसलिए अब तुम्हें एक काम चुनना है जिसमें आँखों की खास जरूरत न पड़े।

यह सुनकर उस बच्चे की आँखें डब-डबा आई। उसे बहुत निराशा हुई। वह रुँआसा हो आया। डॉ. ने उसको थपथपाते हुए कहा कि निराश क्यों होते हो ? तुम्हारी तो आवाज़ बहुत अच्छी है। तुम बहुत अच्छा गाते हो। संगीत की साधना करो। तुम्हारे अंदर तो महान संगीतकार की प्रतिभा है। तुम एक दिन जरूर नाम कमाओगे।

यह बालक कोई और नहीं बल्कि श्री विष्णु दिगंबर पलुस्कर थे। यानी....

"संगीत का लहराता सागर" जिन्होंने दृष्टिदोष के बावजूद संगीत क्षेत्र में सफलता पाई। यह सफलता कैसे पाई ? इसे जानने से पूर्व थोड़ी-सी संगीत की चर्चा आवश्यक है।

बोलचाल की भाषा में, जिसे हम गाना, बजाना व नाचना कहते हैं, इसे ही संगीत शास्त्र में गायन, वादन और नृत्य कहते हैं, तीनों का संयुक्त नाम संगीत है। संगीत का अर्थ है—सुंदर ढंग से गाना। गाने के साथ कोई वाद्य बजाने से उसकी मधुरता बढ़ती है। साथ में अगर अंग-मुद्राओं द्वारा भाव-प्रदर्शन भी हो तो राग भाव तथा रस की त्रिवेणी बहने लगती है। यह सब किसी निश्चित लय में होता है। इसलिए नाद (स्वर) और गति (लय) ही संगीत के प्रमुख तत्व हैं।

विष्णु दिगंबर पलुस्कर का जन्म 18 अगस्त, 1872 को रक्षा-बंधन के दिन करूंदवाड़ रियासत में हुआ था। इनका बचपन का नाम "गाडगिल" था। गांव का नाम 'पलुस" था। इसलिए बाद में पलुस्कर कहलाए। इनके पिता का नाम श्री दिगंबर गोपाल था। वे रियासत के राज पुरोहित थे। उन्हें कीर्तन-गायन में प्रवीणता हासिल थी। कीर्तन करने वाले को कीर्तनकार अथवा कीर्तनाचार्य कहते हैं। इन्हें संगीत कला का ज्ञान होता है। इसलिए विष्णु दिगंबर में, संगीत के संस्कार, बचपन से ही थे।

"करूंदवाड़" रियासत महाराष्ट्र के 'पूना' नगर से 150 मील दक्षिण की ओर है। उन दिनों वहाँ पर राजा दाजी साहब पटवर्धन राज करते थे। पलुस्कर परिवार के बच्चों का राजमहल में आना-जाना था। राजकुमार नाना साहब भी विष्णु की आयु के थे। दोनों ही स्वस्थ, सुंदर मधुरभाषी एवं प्रतिभाशाली थे। इसलिए दोनों में मित्रता हो गई। राजा साहब भी विष्णु को चाहने लगे थे। उन्हें पुत्रवत स्नेह करते थे। उन्होंने दोनों की शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध राजमहल में किया था। इसलिए दोनों का ज्यादा समय एक-दूसरे के साथ बीतता। दोनों एक साथ खेलते व एक साथ पढ़ते। दोनों का यज्ञोपवीत संस्कार भी एक साथ हुआ। यहाँ तक कि दोनों

की शादी भी एक साथ हुई थी। उस समय वे सातवीं कक्षा में पढ़ते थे। उन दिनों अक्सर छोटी आयु में ही, माता-पिता अपने बच्चों का विवाह कर देते थे। विष्णु की पत्नी का नाम विठाबाई था, जो बाद में रमाबाई के नाम से प्रसिद्ध हुई। विष्णु के पिता उन्हें पढ़ा-लिखा कर रियासत का कोई बड़ा अधिकारी बनाना चाहते थे। लेकिन उन्हें तो कुछ और ही बनना था।

पटाखों वाली घटना के पश्चात उसे मिराज भेजा गया। उसी समय महाराज करूंदवाड़ ने एक पत्र भी भेजा था। इसमें महाराज मिराज ने, विष्णु की चिकित्सा के लिए प्रार्थना की थी। विष्णु कुछ समय मिराज में ही रहा। इलाज चलता रहा। इलाज के पश्चात वह वापिस करूंदवाड़ आ गया।

इन दिनों विष्णु बड़ा चिंतित दिखाई देता था। वह नेत्रहीन तो नहीं था। परंतु पूरी तरह से दृष्टि ठीक भी नहीं थी। इसलिए उसकी चिंता का विषय, अपना भविष्य था। वह अपने भविष्य ही के बारे में सोच रहा था कि उसकी पत्नी ने पास आकर पूछा .... "क्या बात है ? आज आप इतने निराश क्यों हैं ?"

विष्णु कुछ कहना चाहता था, परंतु चुप रहा। तब पत्नी ने स्नेहपूर्वक उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया, फिर पूछा ...... "आप उदास क्यों हैं ? बोलते क्यों नहीं ?"

"अब मेरा क्या होगा ?" विष्णु अत्यंत दुखित स्वर में बोले।

"अरे ! होना क्या है ? आप क्यो चिंता करते हैं ? मैं जो हूँ आपके साथ और फिर महाराज भी तो हैं।"

तभी द्वार पर दस्तक हुई। बाहर राजा का संदेशवाहक खड़ा था। उसने कहा—"महाराज ने विष्णु को तुरंत बलाया है।" यह सुनकर विष्णु और भी चिंतित हो उठे। उनका दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। तभी पत्नी ने पास आकर कहा—"अब व्यर्थ की चिंता छोड़ो और महाराज के पास जाकर जो भी

कहना चाहते हो कह डालो।" पिता भी वहीं थे। विष्णु तुरंत तैयार हुआ। राजमहल में गया। "प्रणाम महाराज !" विष्णु ने नम्रता से कहा। महाराजा ने विष्णु को अपने पास बुलाया। प्यार से उसकी पीठ सहलाने लगे, और बोले—"विष्णु! मुझे दुःख है कि तुम्हारी आँखें पूरी तरह से ठीक नहीं हुईं। मैं तुम्हारे भविष्य के लिए चिंतित हूँ। मिराज के महाराजा को भी मैंने तुम्हारे लिए पत्र लिखा है। वे भी चिंतित हैं। थोड़ी देर चुप रहने के बाद बोले "अरे ! तू तो बड़ा भाग्यशाली है जिसके लिए दो-दो रियासतों के राजा सोचते हैं। तू क्यों चिंता करता है। हम जो हैं।"

अपनी बात जारी रखते हुए महाराज ने कहा—"मिराज महाराज के आश्रय में एक बहुत बड़े संगीतकार हैं। उनका नाम है— बाल कृष्ण बुवा। वे उनके दरबारी-गायक हैं। उनके जैसा गायक पूरे उत्तर भारत में नहीं है।"

"मिराज महाराज ने तुम्हारी संगीत शिक्षा की जिम्मेदारी ले ली है। इसलिए वहाँ जाने की तैयारी करो। अब और कोई चारा नहीं। जाते हुए मेरा पत्र लेकर जाना।"

यह सुन कर विष्णु ने प्रसन्नतापूर्वक कहा— "ठीक है महाराज ! मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।" पत्र लेकर विष्णु दिगंबर संदेशवाहक के साथ बग्घी पर सवार हुए और मिराज पहुँच गये।

महाराजा मिराज को वह पत्र संदेशवाहक ने दिया जिसमें लिखा था।......

करूंदवाड़

तिथि 5.7.1887

परम आदरणीय महाराजा बाला साहब,

नमस्कार।

आपके पत्र से मेरे दिल का बोझ हल्का हो गया है। मैं आपका हृदय से आभारी हूँ,आपने जो विष्णु के लिए किया अथवा कर रहे हैं, उसके लिए मेरे पास शब्द

नहीं हैं। आप सदैव हमारी रियासत के शुभ चिंतक रहे हैं।

विष्णु के बारे में आपका निर्णय बिल्कुल सही है। मैं भी उसके लिए यही सोच रहा था। कृपया उसकी संगीत शिक्षा का प्रबंध अपने दरबारी गायक श्री बाल कृष्ण बुवा को सौंप दें। इस बीच विष्णु आपके आश्रय में रहेगा। धन्यवाद !

भवदीय

मोहर

हस्ताक्षर

महाराज करूंदवाड़

पत्र पढ़ने के बाद महाराज मिराज ने श्री बाल कृष्ण बुवा को बुलवाया। जब वे उपस्थित हुए तो महाराज ने कहा—

''बड़े बुवा साहब ! तुम जानते हो, इस समय मैंने तुम्हें क्यों बुलाया है ?''

''नहीं महाराज।'' वे हाथ जोड़कर बोले।

''तो सुनो ! तुम मेरी रियासत के सर्वश्रेष्ठ गायक हो। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारे जैसा और भी कोई गायक हो।''

महाराजा ने आदेशपूर्वक कहा !

''मैं समझा नहीं महाराज !'' वे उसी स्वर में बोले।

''देखो ! करूंदवाड़ के महाराज ने विष्णु नाम के एक किशोर को मेरे पास भेजा हैं। मैंने उसकी संगीत शिक्षा की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली है। मैं यह जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर डालता हूँ। तुम उसे अपना शिष्य बना लो। ग्वालियर घराने की पूरी गायकी उसे सिखा दो। मुझे विश्वास है कि वह इस रियासत का नाम पूरे भारत में बुलंद करेगा।'' इतना कहकर महाराज, बुवा साहब की ओर देखने लगे।

''ठीक है महाराज ! मैं आपकी आज्ञा को कैसे टाल सकता हूँ ? मैं उसे अपने घराने की खास तालीम दूँगा। आप कोई अच्छा-सा मुहूर्त देखकर ''गंडा'' (गुरु शिष्य गठबंधन) बंधवाने की तिथि निश्चित कर दें। ताकि मैं अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकूं।''बुवा साहब ने विनम्रतापूर्वक कहा।

महाराज प्रसन्न हुए। उन्होंने विष्णु को बुलवाया। विष्णु आया और उसने प्रणाम किया। महाराजा ने प्रेमपूर्वक कहा—"विष्णु ! मैंने तुम्हारी संगीत शिक्षा का प्रबंध कर दिया है। अगले सप्ताह "गंडा" बंधवाने के पश्चात तुम्हारी शिक्षा आरम्भ हो जायेगी। मैंने बुवा साहब को कह दिया है। वे तुम्हें अपने घराने की ख़ास तालीम देंगे। तुम्हें गुरु आज्ञा का पालन करना होगा। बहुत मेहनत करनी होगी। एक दिन तुम बहुत बड़े गायक बनोगे। इसका मुझे विश्वास है।"

"ठीक है महाराज। मुझे तो बचपन से ही गाने का शौक है। मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा। मैं भाग्यशाली हूँ कि मुझे आपके दरबारी गायक, बुवा साहब जैसे प्रसिद्ध गायक से तालीम मिलेगी। मैं हृदय से इस कला को स्वीकार करता हूँ और वचन देता हूँ कि अपना जीवन इस कला के लिए अर्पित कर दूंगा" विष्णु ने साहसपूर्वक कहा।

महाराजा मिराज आश्वस्त हुए। उन्होंने 7.8.1887 के दिन भरी सभा में, विष्णु को, श्री बाल कृष्ण बुवा से "गंडा" बंधवा दिया। इस अवसर पर विष्णु की ओर से उन्होंने एक पगड़ी, शाल, बादाम, मिश्री और एक सौ एक रुपए, बुवा साहब को भेंट किए।

इस प्रकार विष्णु की संगीत शिक्षा विधिवत रूप से बुवा साहब के आश्रय में होने लगी। वे अपने गुरुदेव के पास सारा दिन रहते। सेवा करते। संगीत सीखते और रियाज़ करते।

उस काल में संगीत को सीखना बड़ा कठिन कार्य था। वह भी एक ऐसे विद्यार्थी को जिसकी आँखों की रोशनी कम हो। विण्णु को यह सुविधा इसलिये मिल गई क्योंकि उन्हें राजाश्रय प्राप्त था। उस काल के "गुरु" संगीत की शिक्षा केवल अपने विश्वासपात्रों अथवा नज़दीकी रिश्तेदारों को ही देते थे। उस समय गुरु-शिष्य प्रणाली प्रचलित थी। इस प्रणाली में 'शिष्य' गुरु के पास रहकर सीखते थे। विद्यार्थी का ज्यादा से ज्यादा समय 'गरुजनों' की सेवा में बीतता था।

इसलिए गुरु-शिष्य परंपरा का निर्वाह तो विष्णु ने भी किया। अन्य शिष्यों के साथ, गुरु-गृह के छोटे-बड़े कार्य वे भी श्रद्धापूर्वक करते थे।

गुरु-गृह में संगीत शिक्षा रात्रि को दी जाती थी। नये एवं पुराने शिष्य एक साथ शिक्षा ग्रहण करते थे। सभी शिष्यों को गोल दायरे में बिठाकर बीच में गुरुदेव बाल कृष्ण बुवा स्वयं बैठते थे। राग का परिचय नहीं बताते थे। सीखने वालों को कई बार तो 'राग' का नाम भी पता नहीं होता था। कला को गुप्त रखने की परंपरा थी। 'सूत्र' रूप में लिखाया जाता था। आरंभ में वे कोई 'बंदिश' गाते थे। संगीत की रचना जिसमें गीत/काव्य हो उसे 'बंदिश' कहते हैं। पूरी 'बंदिश' सुनाने के पश्चात वे अपने शिष्यों को वैसा ही गाने के लिए कहते। शिष्यों को गाने में कठिनाई होती। क्योंकि पूरी 'बंदिश' को सुनकर एकदम हू-बहू गाना कठिन होता है। इस पर उन्हें डाँट भी खानी पड़ती थी। फिर दो तीन बार 'गुरुदेव' उस 'बंदिश' को गाते और शिष्यो से दोहराने के लिए कहते। जब कुछ शिष्य 'बदिश' को गाने लगते तो फिर उन्हें 'रियाज़' करने के लिए कहते। संगीतकारों मे अभ्यास को 'रियाज़' कहा जाता है। यह एक पारिभाषिक शब्द है। जिसका अर्थ है 'संगीत-साधना'।

उस काल में संगीत की पुस्तकें नहीं होती थीं। सारी शिक्षा मौखिक रूप से होती थी। शिष्यगण प्रथम अपने 'गुरु' की आवाज़ को सुनते थे। साथ-साथ उसका अनुकरण करते थे। फिर उसका रियाज़ करते थे। इसलिए प्रथम—'सुनना' फिर 'सीखना' और अंत में 'अभ्यास' करना ही संगीतकार बनने का मूल-मंत्र था।

उन दिनों संगीत कला के सूक्ष्म भेद 'गुरुजन' आसानी से नहीं बताते थे। सिखलाने का भी कोई निश्चित ढंग नहीं था। सब कुछ 'गुरुजी' के 'मूड' पर ही निर्भर करता था। हरेक राजा-महाराजा चाहते थे कि उनके दरबार में अच्छे से अच्छे कवि, गायक, वादक, नृत्यकार एवं चित्रकार हो। क्योंकि ऐसे कलाकारों से राज्य का नाम होता था। इसके लिये वे हर तरह का प्रोत्साहन देते थे।

श्री बाल कृष्ण बुवा बड़े ही सहृदय व्यक्ति थे। वे ग्वालियर घराने के वयोवृद्ध गायक थे। ग्वालियर प्रदेश की संगीत-परंपरा का विशेष महत्व माना जाता है।

क्योंकि वहाँ के राजा व लोग, सदा से ही संगीत प्रेमी रहे हैं। श्री बाल कृष्ण बुवा इससे पूर्व इचल करंजीकर रियासत के दरबारी गायक थे। वे बंबई में स्थाई रूप से रहना चाहते थे। परंतु वहाँ की जलवायु उन्हें रास नहीं आई। दमे के मरीज हो गए थे। मिराज के महाराज ने उनकी बीमारी का इलाज़ अपनी देख-रेख में करवाया था। इसलिए उन्होंने मिराज-महाराज के आश्रय में हमेशा के लिए रहना स्वीकार कर लिया।

'विष्णु' पूरी एकाग्रता से अपने 'गुरुजी' को सुनता था। फिर अनुकरण करता और उसके बाद हमेशा 'रियाज़' करता रहता था। विष्णु की आवाज़ मधुर थी। परंतु उसकी आवाज़ कठिन क्रियाओं के लिए ज्यादा उपयोगी नहीं थी। इसलिए 'गुरु जी' उन्हें विशेष प्रकार का अभ्यास करवाते थे। जिसे 'मन्द्र साधना' कहते हैं।

संगीत में तीन 'सप्तक' माने जाते हैं। सात शुद्ध स्वरों के समूह को 'सप्तक' कहते हैं। नीची आवाज़ के स्वर 'मन्द्र सप्तक' एवं ऊँची आवाज़ के स्वर 'तार-सप्तक' में माने जाते हैं। बीच के स्वरों को 'मध्य सप्तक' कहते हैं। विष्णु धीरे-धीरे मंद्र साधना में जुट गया। इस प्रकार की 'संगीत-साधना' के चार चरण होते हैं।

(1) प्रणव साधना—विभिन्न स्वरों पर 'ओम्' शब्द का दीर्घ उच्चारण करना।
(2) षड़ज साधना—बार-बार 'षड़ज' अर्थात 'सा' स्वर पर दीर्घ उच्चारण करना।
(3) उच्चारण साधना—आ,ए,ई,ऊ, आदि आकारों को विभिन्न स्वरों पर गाना।
(4) मन्द्र-साधना—नीची, मोटी, अथवा भारी आवाज़ का विशेष अभ्यास करना।

इस प्रकार की साधना से, विष्णु ने दो-तीन वर्ष में, आवाज़ के सूक्ष्म गुणों

को प्राप्त कर लिया। अब उसकी आवाज़ निर्दोष रूप से तीनों सप्तकों में, द्रुत गति से घूमने लगी। विष्णु अपने गुरु के कठोर अनुशासन का [illegible] पालन करता था। गुरु-सेवा को अपना कर्तव्य समझता था। कर्तव्य पालन में कभी ढील नहीं बरतता था। इसलिए 'गुरुजी' भी उसे विशेष रूप से चाहते थे।

किले की एक कोठरी में विष्णु अभ्यास करता था। रोजाना आठ-दस घंटे का अभ्यास होता था। जिसमें 'स्वर-साधना' के साथ-साथ वह 'लय साधना' भी करता था। दायें हाथ से तानपुरा बजाता, बायें हाथ से तबले के बायें भाग (डुग्गा) पर 'लय-ताल' का हिसाब रखकर गाता था। वह एक ही समय, तीनों कार्य संयुक्त रूप से करता था।

विष्णु अपनी संगीत साधना में इतना लीन रहता कि खाने-पीने की सुध न रहती। वह इतनी कठिन संगीत साधना से कुछ दुर्बल हो गया। क्योंकि संगीत-साधना के साथ अच्छी खुराक का होना आवश्यक है।

महाराजा को पता चला तो उन्होंने विष्णु की खुराक का विशेष प्रबंध कर दिया। अब उसे भोजन के अलावा सूखा मेवा, काजू व बादाम भी मिलने लगा। उसका भोजन राजा साहब के महल में होने लगा। इससे उसकी प्रतिष्ठा भी बढ़ी।

इन सब सुविधाओं से विष्णु का रूप-रंग और भी निखर उठा। इस प्रकार विष्णु ने, लगातार [illegible] वर्ष तक श्री बाल कृष्ण बुवा से संगीत की शिक्षा ली। अब वे ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, और तराना प्रवीणता से गाने लगे। शास्त्रीय संगीत की यही प्रमुख गायन शैलियां मानी जाती हैं। ख्याल-गायकी व भजन-गायन शैली में विष्णु ने विशेष दक्षता हासिल कर ली।

'गुरुजी' ने मंच-प्रदर्शन के समय उन्हें अपने बराबर बैठ कर गाने की अनुमति दे दी। इसलिए विष्णु दिगंबर, मंच पर गुरुजी की संगत केवल तानपुरे से ही नहीं, बल्कि अपनी आवाज़ से भी करने लगे।

एक दिन महाराज मिराजकर ने गुरु शिष्य दोनों की जुगलबंदी (मिल कर

गाना) सुनी तो मुग्ध हो उठे। दोनों की गायकी में कोई अंतर प्रतीत नहीं हो रहा था। विष्णु ने बहुत ही सुदंर ढंग से गाया था। उसने अपने गुरुजी की गायन शैली को अपने अंदर बसा लिया था। गायन की समाप्ति पर महाराजा भावुक होकर बोल उठे– "बुवा साहिब अब तो विष्णु "छोटे बुवा" कहलाने के योग्य हो गया है।"

"जी महाराज ! यह सब आपके आशीर्वाद, मेरी तालीम और इसकी मेहनत का फल है" गुरुजी ने कहा।

तभी से मिराज के लोग विष्णु दिगंबर को "छोटे बुवा" कहकर पुकारने लगे। उस वक्त वे चौबीस वर्ष के थे। विष्णु दिगंबर अपने गुरुजी के साथ बाहर के कार्यक्रम में भी जाने लगे। वे गुरुजी के साथ तानपुरा भी बजाते और बीच-बीच में गाते भी थे।

आस-पड़ोस की कई रियासतों के दरबारों में कार्यक्रम हुए, तो विष्णु दिगंबर के गाने की चर्चा होने लगी। धीरे-धीरे विष्णु की प्रशंसा होने लगी। उन दिनों गुरुजन संगीत सिखाते समय कई बार रागों के नाम एवं परिचय आदि नहीं बताते थे। अनेक रागों के नाम का विष्णु को इन संगीत सभाओं में पता चला था। मंच-प्रदर्शन के अनुभव से उनका आत्म-विश्वास बढ़ा। विभिन्न संस्थाओं के प्रबंधकों से मेल-जोल भी हुआ। इस प्रकार विष्णु दिगंबर का प्रभाव बराबर बढ़ने लगा।

बालकृष्ण बुवा जब गाते थे तो विष्णु तैयारी के साथ उनकी संगत करते। यह देखकर उनके अन्य शिष्य उनसे जलने लगे। उन्होंने गुरु-शिष्य के बीच शंकाएं उत्पन्न कर दीं। विरोधियों ने राजा को भी पं. बाल कृष्ण बुवा के खिलाफ भड़का रखा था। इसलिए वे हृदय से उनका आदर नहीं करते थे।

एक दिन की बात है कि गुरु-शिष्य दोनों सैर करने के लिए जा रहे थे। रास्ते में राजा साहब मिल गए। राजा साहब ने बग्घी रोककर, विष्णु दिगंबर को

बग्घी में बैठने की आज्ञा दी। उन्हें बैठना पड़ा। राजा साहब ने गुरुजी को बग्घी पर नहीं बैठाया। गुरुजी को पैदल जाते देखकर, विष्णु के हृदय को आघात लगा।

इसी प्रकार राजा की तरफ से एक 'राज-भोज' दिया गया। इसमें नगर के सभी गणमान्य व्यक्तियों को बुलाया गया। विष्णु दिगंबर भी वहां उपस्थित थे। उन्होंने राजा से पूछा कि गुरुजी नहीं आए। राजा ने कहा कि उन्हें निमंत्रण-पत्र नहीं भेजा गया। वे तो केवल मात्र, एक दरबारी गायक हैं। यह दूसरा आघात विष्णु दिगंबर के लिए असहनीय था। उनका मन मिराज की इन घटनाओं से विचलित हो उठा। उन्हें लगा कि—'पराधीन सुपने सुख नाहिं।' जब तक मैं राजा के अधीन हूँ तब तक मैं कुछ नहीं कर सकता।

एका-एक उन्होंने बहुत बड़ी प्रतिज्ञा कर डाली। प्रतिज्ञा थी कि, "जब तक समाज में संगीत व संगीतकार को आदरणीय स्थान नहीं दिला दूँगा, तब तक चैन से नहीं बैठूँगा।" यह सोचकर उन्होंने राजाश्रय छोड़ देने का फैसला भी कर लिया, क्योंकि यह सब कुछ वे मिराज में रहकर नहीं कर सकते थे। इसलिए मिराज छोड़ देने का दिन भी निश्चित कर लिया।

मन-ही-मन में विष्णु दिगंबर, संगीत के भविष्य और अपने भावी कार्यक्रम बनाने लगे। उन्होंने दृढ़ संकल्प कर लिया वे अपना जीवन संगीत के लिए अर्पण कर देंगे। इसलिए अब उन्होंने अपने 'रियाज़' का समय 10 घण्टे से बढ़ाकर 12 घण्टे कर दिया।

उन्हें अपनी कला से ही अपनी पहचान बनानी थी। अनेकों घरानेदार गायकों से मुकाबला भी करना था। इतनी रियाज़ के पश्चात भी उनका गला बैठता नहीं था। इससे उन्हें संतोष हुआ।

उन दिनों शास्त्रीय गायकों और तबला वादकों के वीच मुकावले की भावना होती थी। कई बार 'राग-रंग' की बजाय 'राग-जंग' का अखाड़ा बन जाता था। घरानेदार गायक अपने को सर्वश्रेष्ठ और दूसरों को घटिया वताते थे। एक ही

प्रकार की गायन शैली सिखाते और सुनाते थे। उस काल में संगीत के पाँच घराने माने जाते थे। यह आज भी माने जाते हैं। जैसे–ग्वालियर घराना जिसके गायक जोरदार एवं खुली आवाज़ में ध्रुव पद अंग के ख्याल गाते हैं। बोल तान, गमक तान और सपाट तानों का अधिक प्रयोग करते हैं, इसके आदि गायक नत्थन पीर बख्श थे। पं. विष्णु दिगंबर इसी परंपरा की गायकी गाते थे।

*आगरा घराने के गायक भी खुली और जोरदार आवाज़ में गाते हैं परंतु वे एक विशेष प्रकार का अलाप करते हैं जिसे–'नोम-तोम' का अलाप कहा जाता है। यह ख्याल, ध्रुपद व धमार गीत शैलियों को 'बंदिश' में गाते हैं और बोल तानों का विशेष प्रयोग करते थे। इस घराने के आदि गायक अलखदास, मलूक दास थे। उस्ताद फैयाज खाँ इसी घराने की गायकी गाते थे।

*दिल्ली घराने के गायक ख्याल गायन शैली की कलापूर्ण बंदिशों में प्रसिद्धता रखते हैं। तानों के विभिन्न प्रकारों में दक्षता एवं ताल व लय पर अधिकार रखते हैं। इस घराने के आदि गायक तानरस खाँ थे। उस्ताद चाँद खाँ इसके प्रसिद्ध गायक थे।

*जयपुर घराने के गायक बंदिशों के संक्षेप रूप, खुली आवाज़ में गाते हैं। उनका आवाज़ उच्चारण करने का अपना ही ढंग है। वे भी खुली आवाज़ में, छोटी-छोटी एवं वक्र तानों का प्रयोग करते हैं। इस घराने के आदि गायक 'मनरंग' थे। आधुनिक काल में इस परंपरा का पालन पद्मश्री सोहन सिंह आदि करते थे।

*किराना घराने के गायक एक-एक स्वर बढ़ाकर गाते हैं। इसे ही 'बढ़त' कहते हैं। उनके स्वर उच्चारण एवं प्रयोग का एक विशेष ढंग है। वे ठुमरी-अंग की शैली से गाते हैं। अलाप को महत्व देते हैं। इस घराने के आदि गायक बंदे अली खाँ थे। उस्ताद अब्दुल करीम खाँ व उस्ताद अमीर खाँ भी इसी परम्परा के गायक थे।

इन सभी घरानों की अपनी-अपनी पहचान थी। सभी के कुछ मौलिक गुण भी थे। परंतु अनेक कमियां भी थीं। इसलिए पण्डित जी कहते थे कि "हमें घरानों के प्रमुख गुणों का अनुकरण करना चाहिए और उनके सीमित दृष्टिकोणों अथवा कट्टरता को छोड़ देना चाहिए।"

उस काल के गायकों में तर्क-वितर्क की गुंजाइश नही थी। इसलिए विष्णु दिगंबर जी ने प्रत्येक पक्ष से तैयारी कर ली थी। इसके लिए दायें पाँव से लय का हिसाब भी रखते थे, ताकि शरारती तबला-वादक के साथ भी गाया जा सके। और दाँये हाथ से तानपुरा व बायें हाथ से "डग्गे" (तबले का बायां भाग) पर ताल का हिसाब रखते थे। यही कारण है कि जीवन भर कभी 'बेसुरे' अथवा 'बेताल' नहीं हुए।

'मिरज छोड़ने की बात' केवल बलवंत पेंडसे और श्री कृष्ण हिर्लेकर को ही पता थी क्योंकि उन्होंने भी विष्णु दिगंबर के साथ जाने का फैसला लिया था। शेष किसी को भी इस बात की खबर नहीं थी। श्री कृष्ण हिर्लेकर व बलवंत पेंडसे इनके समवयस्क गुरुभाई व शिष्य भी थे। वे इन्हें मित्रवत् स्नेह एवं बड़े गुरु भाई का सम्मान देते थे।

मिरज छोड़ने का दिन ज्यों-ज्यों नज़दीक आ रहा था त्यों-त्यों यह लोग अपने कार्य के प्रति गंभीर व चिंतित रहने लगे थे। प्रत्येक रात्रि को वे आपस में गुप्त-मंत्रणा करते थे। इस मंत्रणा में विष्णु दिगंबर अपने मन की बात करते थे। भविष्य में क्या करना है, इसकी रूपरेखा बनाते। उन्होंने अपने सभी फैसलों को गुप्त रखने का निर्णय लिया।

जाने से एक रात्रि पूर्व विष्णु दिगंबर ने उनसे कहा— "या तो पक्के मन से मेरा साथ दो अन्यथा यह मार्ग छोड़ दो। मेरा रास्ता त्याग और संघर्ष का है। संगीत की उन्नति के लिए कुछ कर दिखाने का है। जब तक सफलता नहीं मिलती, जब तक मिरज लौटने का सवाल ही पैदा नहीं होता। अपने घर जैसी

सहूलियतें कहीं नहीं मिलेंगी। भूखे-प्यासे भी रहना होगा। हर हालात में संगीत के लिए सोचना, संगीत के लिये कुछ करना, और इसके लिए जीना व मरना है। क्या यह सब तुम कर पाओगे?" "विष्णु भाई। यह आप क्या कह रहे है? आप ऐसा क्यों सोचने लगे? हम एक साथ जीयेंगे, एक साथ मरेंगे। अरे! हम भी तो संगीत के लिए आपकी ही तरह सोचते हैं। फिर आप व्यर्थ की चिन्ता क्यों करते हैं?" दोनों मित्रों ने बारी-बारी से कहा। उनकी दृढ़ता देखकर विष्णु दिगंबर आश्वस्त हुए।

2

ऐतिहासिक यात्रा का शुभारंभ

यह विष्णु दिगंबर जी की एक महत्त्वपूर्ण संगीत यात्रा थी। इसका मुख्य उद्देश्य था–शास्त्रीय-संगीत का प्रदर्शन। उन दिनों लोग, संगीत को केवल मनोरंजन का साधन समझते थे। विष्णु दिगंबर जी इसे भक्ति, साधना व चरित्र-निर्माण के रूप में स्थापित करना चाहते थे ताकि समाज में संगीत के लिए सम्मानीय स्थान बने। संगीत के भविष्य की रूपरेखा भी इसी यात्रा काल में तैयार करनी थी। श्रीकृष्ण हिर्लेकर व वलवंत पेंडसे भी इनके साथ जाने वाले थे। मिराज से प्रस्थान का दिन विष्णु दिगंबर जी की 25वीं वर्षगाँठ अर्थात् 18 अगस्त, 1896, तय हुआ। इतनी लम्बी यात्रा पर जाने के लिए केवल पहने हुए कपड़े, एक बिस्तर और 25 रुपये के अलावा उनके पास कुछ नहीं था। ये 25 रुपये भी किसी मित्र से उधार लिये थे।

उस दिन राजमहल के अंदर, माधव जी के मंदिर में, एक धार्मिक उत्सव मनाया जा रहा था। उत्सव की समाप्ति पर 'विष्णु' जी ने महाराजा से, बाहर जाने की आज्ञा माँगी। महाराजा ने टालना चाहा। लेकिन विष्णु जी ने अपने संबंधी के अंतिम दर्शन का कारण बताकर, किसी तरह से अनुमति ले ली। महाराजा ने कहा कि, "अगर जाना ही है तो शीघ्र वापिस लौट आना।"

18 अगस्त, 1896 को विष्णु दिगंबर जी ने अपने दो साथियों सहित, मिराज की धूल को माथे से लगाया और रात्रि की गाड़ी से रवाना हो गए। यात्रा का

पहला पड़ाव "औध" (अवध) रियासत में किया। यहाँ पर किसी ज़माने में इनके 'गुरुजी' श्री बाल कृष्ण बुवा दरबारी गायक थे। उन दिनों 'गुरुजी' के गुरु भाई श्री गुडु बुवा इंगली वहाँ रहते थे। उन्होंने भी स्नेह-सहयोग देने का वचन दिया। वहाँ के राजमहल में एक संगीत सभा का आयोजन हुआ। जिसमें विष्णु जी ने भाग लिया। यहाँ पर उन्होंने सर्वप्रथम एक भजन गाया जिसका स्थाई इस प्रकार था:

"श्री राम चंद्र कृपालु भज मन हरण भव भय दारूणम।
नव कंज लोचन कंच मुख, कर कंज पद कंजारूणम।"

इसके पश्चात थोड़ी देर शास्त्रीय संगीत प्रस्तुत किया। वहाँ उनका गायन काफी सफल रहा। जिससे महाराजा ने प्रसन्न होकर उन्हें कुछ धन राशि व शाल भेंट किया।

'औंध' (अवध) रियासत के पश्चात विष्णु दिगंबर जी सतारा रियासत में पहुंचे। वहाँ के प्रसिद्ध वकील दादा साहब करंदीकर के घर पर भी संगीत सभा हुई। इस सभा में विष्णु जी ने चार-पाँच घंटे गाया। इस गायन में उन्होंने राग कल्याण की बंदिश ..."वंदौ श्री हरी पद सुखदाई" और राग केदार की बंदिश "राम नाम की ओट बड़ी है" अत्यंत भावपूर्ण ढंग से गाया। परंतु कार्यक्रम की समाप्ति पर वकील साहब ने केवल दस रुपये भेंट स्वरूप दिए। विष्णु ने कहा, "इतनी देर गाने के पश्चात केवल इतनी सी भेंट ?"

वकील साहब कहने लगे, "अभी आप नए हैं। आप का नाम तक लोग जानते नहीं। जब आप भविष्य में यश एवं कीर्ति कमा कर लौटेंगे तो मैं इससे दस गुना ज्यादा भेंट दूँगा।"

विष्णु दिगंबर जी ने इस बात को गंभीरता से लिया और निश्चय किया कि एक दिन उन्हें इस कसौटी पर भी पूरा उतरना है।

इसके बाद वे बंबई पहुँचे। वहाँ भी एक संगीत सभा में भाग लिया। यहाँ

पर उन्होंने राग मालकौस में एक ध्रुपद गाया जिसका स्थाई इस प्रकार है..."आये रघुवीर धीर लंकधीश अवधमान"। और आगे श्री में भी एक ध्रुपद....."धन धन धन मात गंग, चाहत मुनि जन प्रसंग" गाकर प्रशंसा प्राप्त की। शास्त्रीय संगीत में ध्रुपद गायकी को उच्च स्थान प्राप्त है।

इसके पश्चात बड़ौदा पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही आप श्री राम मंदिर में गए। मंदिर का पुजारी भी संगीत प्रेमी था। विष्णु दिगंबर जी ने उस मंदिर में संगीत कार्यक्रम आयोजित करने को कहा। पुजारी मान गया क्योंकि वह इनका गाना पहले भी सुन चुका था। उसने पूरा सहयोग देने का वचन दिया। विष्णु दिगंबर जी ने निमंत्रण-पत्र छपवाये। पुजारी ने वह निमंत्रण-पत्र, शहर के पढ़े-लिखे लोगों तक पहुँचा दिया। मंदिर में आने वाले नित्य प्रति के श्रद्धालुओं को भी आने को कहा। दिन व निश्चित समय पर मंदिर में संगीत कार्यक्रम आरंभ हुआ। श्री राम मंदिर के अंदर और बाहर भारी जन-समुदाय एकत्रित हो गया।

विष्णु दिगंबर जी ने सर्वप्रथम सरस्वती वंदना को एकाग्रता से गाया। इसके पश्चात तुलसीदास जी का भजन....."श्री रामचंद्र कृपालु भज मन, हरण भव भय दारूणम" बड़े ही भावपूर्ण ढंग से गाया। कई वर्षों की संगीत साधना रंग लाई। गायन सभा में ऐसा समां बँधा कि तीन-चार घंटों का समय पंख लगाकर उड़ गया। सभी लोग आनंदित हुए। अंत में विष्णु जी ने सभी गणमान्य व्यक्तियों को फूल मालाएं तथा इत्र पान आदि देकर विदा किया। बड़ौदा के लोग इस युवा कलाकार से अत्यंत प्रभावित हुए। विष्णु जी की प्रशंसा, वहाँ की महारानी, जमुनाबाई के कानों में पड़ी। उन्होंने भी विष्णु जी को राजमहल के पूजा मंदिर में बुलवाकर उनका गायन सुना। वे भी गद्‌गद्‌ हो उठीं। उन्होंने महाराजा से कहा तो महाराजा ने भी अपने दरबार में एक संगीत सभा का आयोजन किया। विष्णु जी को सादर निमंत्रित किया गया। विष्णु जी के गायन से महाराजा सयाजीराव अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने 400 रुपये और एक शाल विष्णु दिगंबर जी को भेट किया।

बड़ौदा की ही एक और घटना है। वहाँ की रानी जमुनाबाई ने "कार्तिक-पूर्णिमा" के दिन दरबार के सभी संगीतकारों को आमंत्रित किया। शिव मंदिर में एक संगीत कार्यक्रम रखा गया। वहाँ के एक पुराने उस्ताद फैज़ मुहम्मद को भी गाने के लिए बुलाया गया। उन्होंने यह शर्त रखी कि एक बुजुर्ग कलाकार होने के नाते मेरा गाना आखिर में हो। इधर विष्णु दिगंबर जी को भी उनके प्रशंसकों ने कहा कि आप भी तो इतने बड़े उस्ताद के शिष्य हैं। आपको अंत में गाना चाहिए। लेकिन विष्णु दिगंबर जी ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि..... "वे मेरे गुरुजी के मित्र भी हैं। मैं उनका हृदय से आदर करता हूँ। अतः मुझे उनसे पूर्व गाने में कोई हिचकिचाहट नहीं है। यदि वे मुझसे बेहतर गायेंगे तो इससे मेरा कोई अपमान नहीं होगा।"

निश्चित समय पर संगीत सभा आरम्भ हुई। कई गायकों के बाद विष्णु दिगंबर जी की बारी आई। उन्होंने ऊंचे स्वर (चौथे काले) से गाना आरंभ किया। युवावस्था का जोश, सधी हुई मधुर आवाज़ और माने हुए गुरु की शिक्षा। सभी श्रोताओं के कानों में विष्णु दिगंबर जी का स्वर गूँजने लगा। श्रोतागण मंत्रमुग्ध हो गए। गाना समाप्त हुआ। परंतु सुनने वालों का मन नहीं भरा। यह गाना एक भजन था........"जब जानकी नाथ सहाय करें।"

निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार इनके बाद उस्ताद मौला बख्श तथा फैज़ मुहम्मद का गायन होना था। दोनों वृद्ध कलाकारों ने नीचे स्वर पर गाया। इसलिए उनका गाना नीरस रहा। क्योंकि ऊँचे स्वर के गाने के बाद निचले स्वर से रंग-जमाना कठिन होता है। अचानक यहाँ पर महारानी जमुनाबाई के धार्मिक गुरु श्री गणपति बुवा भी आ गए। राज परिवार की ओर से उन्हें सम्मानपूर्वक बिठाया गया। गणपति बुवा जी ने विष्णु दिगंबर जी का गाना सुनने की इच्छा प्रकट की। यह सुनकर फैज़ मुहम्मद कहने लगे, "मैं बड़ौदा रियासत का वयोवृद्ध गायक हूँ। मेरे पश्चात किसी और का गाना नहीं होगा। इसलिए मैं ही एक-दो

और बंदिशें संगीतिक-रचनाएँ सुनाता हूँ।" परंतु गणपति बुवा नहीं माने। महारानी ने उस्ताद मुहम्मद का गाना बंद करवा दिया। विष्णु दिगंबर फिर गाने लगे। तानपुरा ऊँचे स्वर में मिलाकर विष्णु दिगंबर जी ने उत्साहपूर्वक गाना गाया। इस बार उन्होंने राग बहार की प्रसिद्ध बंदिश, "नई रुत नई फूली बेलि बहारिया" और फिर राग मालगूंजी में, "ये बन में चरावत गैया" सुनाकर सबका मन जीत लिया। इस सभा में सभी ने विष्णु दिगंबर जी की मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

इस घटना से फैज़ मुहम्मद ने अपने आप को अपमानित महसूस किया। उन्होंने स्वयं तथा लोगों द्वारा भी इनके गुरु जी को ऐसे पत्र लिखवाये, जिससे गुरुजी विष्णु दिगंबर से नाराज़ हो गए। कुछ वर्षों पश्चात जब विष्णु दिगंबर अपने गुरुजी से मिलने गए तो प्रणाम करने के तुरन्त बाद गुरुजी का आदेश मिला, "बड़ौदा लौट जाओ और 'खाँ-साहब' से मुआफी मांग कर आओ"। इस पर विष्णु दिगंबर जी ने कहा, "मैं गुरु-आज्ञा का उल्लंघन सपने में भी नहीं कर सकता, परंतु जिस बात में मेरा कोई दोष ही नहीं उसके लिए मुझे दोषी न समझा जाए। आप पहले मेरी बात सुन लें फिर आप जैसा कहेंगे मैं वैसा ही करूँगा।" पूरी बात सुनने के पश्चात गुरुजी ने इन्हें कंठ लगाकर कहा, "मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी।"

महारानी जमुनाबाई ने विष्णु दिगंबर के गायन से प्रभावित होकर उन्हें दरबारी गायक के पद पर रखना चाहा। इसके लिए उन्होंने 400/- रुपये मासिक वेतन तय किया। परंतु विष्णु दिगंबर जी ने कहा, "रानी साहिबा! मैंने संगीत व संगीतकारों को समाज में आदरणीय स्थान दिलाने का संकल्प लिया है। इसके लिये मुझे उत्तर भारत के बड़े नगरों की यात्रा करनी है। सार्वजनिक संगीत शिक्षा-प्रणाली को आरंभ करना है। इतना बड़ा कार्य यहाँ बैठकर नहीं हो सकता। यदि आपकी मुझ पर कृपा दृष्टि है तो इस काम में मेरी सहायता करें। कृपया आप राजा महाराजाओं के नाम एक पत्र लिख दें कि वे मुझे इस कार्य में

सहयोग दें, तो मैं निजी रूप से सदैव आपका आभारी रहूंगा।''

रानी साहिबा सहमत हो गईं। उन्होंने अनेक राजाओं के नाम पत्र देकर विष्णु दिगंबर जी को शुभकामनाओं के साथ विदा किया। यदि पंडित जी चाहते तो ऐशो-आराम से जिंदगी व्यतीत कर सकते थे। उस जमाने के चार सौ रुपये आज के चार हजार से भी अधिक हैं। अब पंडित जी की आर्थिक स्थिति भी ठीक थी। कई शिष्य साथ रहते थे। दो-तीन नौकर भी रख लिए थे। एक-दो अन्य राजाओं ने भी 'दरबारी-गायक' बनाने के लिए कहा, परंतु विष्णु दिगंबर जी अपनी धारणा पर कायम रहे। उन्होंने सदैव अपने जीवन में संगीत की शिक्षा व साधना को, धन की अपेक्षा अधिक महत्व दिया। अब वे संगीत के लिए समर्पित व्यक्ति माने जाते थे।

3

जीवनधारा में नया मोड़

बड़ौदा के पश्चात पंडित जी गिरनार पर्वत की ओर गए। वहाँ पर एक ऐसी घटना घटी, जिससे उनकी जीवनधारा को एक नया मोड़ मिला।

एक दिन जूनागढ़ के पास विष्णु दिगंबर जी अपने शिष्यों के साथ दत्तात्रय मंदिर की ओर जा रहे थे। जंगल का रास्ता था। रास्ते में बरसात होने लगी। पंडित जी ने अपने शिष्यों को धीरे-धीरे मंदिर की ओर बढ़ने के लिये कहा। जब बारिश बंद हो गई तो एक शिला पर बैठकर प्रकृति का आनंद लेने लगे। बैठे-बैठे गाने लगे। कुछ समय बाद उन्हें महसूस हुआ कि उनके नज़दीक कोई खड़ा है। वह एक बैरागी साधु था। विष्णु दिगंबर जी की एकाग्रता भंग हो गई। उन्होंने बैरागी साधु से क्रोधित होकर पूछा–

"क्या आपको संगीत का ज्ञान है ?"

"हाँ ! है," बैरागी ने कहा।

"मेरा गाना आपको कैसा लगा ?" विष्णु दिगंबर ने प्रश्न किया।

"गाना तो अच्छा है पर एक कमी है" बैरागी ने उत्तर दिया।

"क्या कमी है ? मेरे साथ बैठकर गाओ और कमियाँ बताओ।" विष्णु दिगंबर ज़ी मुकाबले के लिए तैयार थे।

"मैं अपनी अंतरात्मा की प्रेरणा से गाता हूँ। किसी के हुक्म से नहीं। यदि तुम्हारे भाग्य में होगा तो सुन पाओगे।" बैरागी ने शांति से कहा और चल दिया।

यह उत्तर सुनकर विष्णु दिगंबर जी स्तब्ध रह गए। मन ही मन सोचने लगे बैरागी ने ऐसा क्यों कहा ? यह सोचकर बैरागी को ढूँढने लगे। मगर बैरागी वहाँ नहीं था। वह जंगल में अदृश्य हो चुका था।

अभी वे मंदिर की ओर जा रहे थे तो उन्हें घाटी में से किसी के गाने की आवाज़ सुनाई दी। वे ध्यान से सुनने लगे। आवाज़ बड़ी मधुर थी। वे आवाज़ की ओर आकृष्ट हुए। जिस तरफ से आवाज़ आ रही थी उसी तरफ आगे बढ़ने लगे। आगे बढ़ने पर एक टूटा-फूटा मंदिर दिखाई दिया। अब आवाज़ पहले से ज्यादा स्पष्ट सुनाई देने लगी। नज़दीक पहुँचे तो उन्होंने देखा कि वही बैरागी साधु, भगवान की मूर्ति के सामने गा रहा था। विष्णु दिगंबर उसके गाने से बड़े प्रभावित हुए। वे मंदिर के द्वार पर खड़े होकर उस अलौकिक संगीत को सुनते रहे। कुछ देर सुनने के पश्चात उन्होंने मंदिर में प्रवेश किया और बैरागी साधु के चरण स्पर्श किये। बैरागी ने गाना बंद कर दिया और पूछा....

''मेरी समाधि भंग करने वाले तुम कौन हो ?''

''महाराज मैं क्षमा चाहता हूँ'', विष्णु दिगंबर नम्रता से बोले।

''मुझसे क्या चाहते हो ?'' बैरागी उसी स्वर में बोला।

''संगीत से सारी सृष्टि को मोहित करने की शक्ति मुझे कैसे प्राप्त होगी ? इसकी मुझे दीक्षा दीजिए।''

''तुम्हारे मन मे अहंकार है। तुम कीमती वस्त्रों और शान-शौकत से रहने की इच्छा रखते हो। संगीत-साधना एक तपस्या का रास्ता है। यह भक्ति भावना का मार्ग है। संगीत के द्वारा इन्हीं भावनाओं का प्रचार करो। चरित्र-निर्माण इसका प्रमुख लक्ष्य है। क्या तुम इस तपस्या के लिए तैयार हो?" बैरागी बोला। ''हाँ महाराज ! मैं इस तपस्या के लिए तैयार हूँ।'' कृपया मुझे अपना शिष्य बनाकर मेरा पथ-प्रदर्शन करें।'' विष्णु दिगंबर जी ने नम्रतापूर्वक कहा।

"बेटा ! तुम्हे शरीर पर राख मलकर जंगल में रहने की आवश्यकता नहीं।

तुम्हारा जन्म ही संगीत उद्धार के लिए हुआ है। तुम्हारी संगीत शिक्षा व साधना में कोई कमी नहीं है। जो कमी मैने बताई थी वह तुम्हारी कला में नहीं व्यवहार में थी। तुम पंजाब प्रदेश में जाकर वहॉ से अपना कार्य आरंभ करो। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है'' बैरागी ने प्रसन्नतापूर्वक कहा।

''महाराज ! मुझे पंजाब के बारे में कुछ बताने का कष्ट करें। क्योंकि मैं वहाँ के बारे में कुछ भी नहीं जानता'' विष्णु दिगंबर जी ने प्रार्थना के स्वर में पूछा।

''बेटा ! पंजाब, सात नदियों का देश था। इसका पुरातन नाम 'सप्त सिंधु' था। आर्य सभ्यता का विकास भी इसी क्षेत्र में हुआ। 'गंधार-देश' पंजाब का ही एक भाग था। जिसमें दुआबा, रावलपिंडी, पेशावर, और सिंध-सागर के इलाके माने जाते थे। वेद-शास्त्र, पुराण, उपनिषद् व स्मृति ग्रंथो की रचना-भूमि पंजाब है। महाराजा रणजीत सिंह के काल में इसका नाम पंजाब प्रसिद्ध हुआ। जिसका अर्थ है-''पांच-पानी'' अर्थात् पाँच दरियाओं की धरती। आज के पंजाब में पॉच नदियाँ बहती हैं। यह प्रदेश सदैव विदेशी हमलावरों का युद्ध मार्ग अथवा युद्ध स्थल रहा है। यही कारण है कि पंजाब की भौगोलिक सीमाऍ सदा बदलती रही हैं। वहाँ के लोग 'वीर-सैनिक' तथा योद्धा हैं। मित्रता, अतिथि-सत्कार, और संगीत प्रेमी भावना के लोग हैं। वहाँ के लोग पंजाबी भाषा बोलते हैं। तुम्हें उन लोगों के बीच कोई कठिनाई नही आएगी। बस ! इतना ही काफी है। अब तुम जाओ और अपना कार्य आरंभ करो। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।''

विष्णु दिगंबर जी ने उन्हें प्रणाम किया और अपने मार्ग की ओर चल दिए। उसके बाद वे 'वैरागी' उन्हें जीवन में कभी नहीं मिले। उन्हें यह भी पता नहीं चला कि वह 'बैरागी' कौन था। इस घटना के पश्चात उन्होंने 'पंजाब' जाने का निश्चय कर लिया। वे पंजाब से ही संगीत की शिक्षा एवं प्रचार का कार्य आरभ करने की योजनाएँ बनाने लगे।

पंजाब आने से पूर्व उन्होंने काठियावाड़ रियासत के अनेकों राजदरबारो में

संगीत प्रस्तुत किया। अनेक मंदिरों एवं अन्य धार्मिक स्थानों पर भी गाया। इससे उनकी प्रसिद्धि बढ़ती गई। सन् 1897 में राजकोट में उन्होंने पहली बार टिकट लगाकर संगीत का आयोजन किया। यह एक नया कदम था। इसकी आलोचना भी हुई। किन्तु कार्यक्रम बहुत सफल रहा। उन दिनों, संगीत, प्रायः राजदरबारों तक ही सीमित था। इसलिए जनता में संगीत के लिए अधिक रुचि न थी। विष्णु दिगंबर जी आम जनता तक संगीत को पहुँचाना चाहते थे। अतः वे आम जनता में कार्यक्रम देना अधिक पसंद करते थे। उनकी सभाओं में आम जनता आती और उनको सराहती।

इस बीच कुछ समय, विष्णु दिगंबर जी ने 'मथुरा' में रहकर संस्कृत व हिन्दी भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। उसके बाद दिल्ली गए। वहाँ पर श्री पन्ना लाल गोस्वामी से संपर्क हुआ। यहीं पर उन्होंने 'संगीत और विज्ञान' विषय का अध्ययन किया।

अब पंडित जी ग्वालियर नगर में आए। उन्हें मालूम था कि संगीत के इतिहास में ग्वालियर का विशेष महत्व माना जाता है। जब तक कोई संगीतकार ग्वालियर के लोगों की प्रशंसा प्राप्त न कर ले तब तक उसे राष्ट्रीय स्तर का कलाकार नहीं माना जाता। वहाँ की जनता में संगीत की गहरी चेतना है। ग्वालियर के राजा-महाराजा बड़े संगीत प्रेमी हुए हैं। वहाँ के राजा मानसिंह तोमर (1556-1607 ई.) की रानी मृगनयनी ने राज्य की ओर से एक संगीत विद्यालय स्थापित किया था। जिसका नाम 'मान-मंदिर' था। उस मान-मंदिर को संगीत सम्राट तानसेन व बैजू बावरा जैसे महान संगीतकारों का सहयोग प्राप्त था।

विष्णु दिगंबर जी ने वहाँ उच्च स्तर की गायकी प्रदर्शित करने का निश्चय किया। उन दिनों प्रसिद्ध संगीतकार उस्ताद निसार हुसैन खा भी वहीं थे। राम कृष्ण बुवा और भाऊ पंडित उनके प्रसिद्ध शिष्य थे। एक दिन जब ढोली बुवा के मंदिर में संगीत सभा हुई तो वहाँ पर उस्ताद अमीर खाँ भी थे।

उन्होंने पडित जी के सुंदर व्यक्तित्व से इन्हें कोई मराठी अभिनेता समझा, परन्तु जब पंडित जी ने दो घंटे शास्त्रीय संगीत की प्रमुख शैली 'ख्याल' को अत्यंत सुंदर ढंग से गाया तो उस्ताद अमीर खाँ भाव-विभोर हो उठे और बीच में ही बोल उठे कि "पंडित जी इस समय जो गा रहे हैं, वही ग्वालियर की सच्ची गायकी है। मैंने हद्दु-हस्सू खॉ जैसे प्रसिद्ध घरानेदार गायकों को भी सुना है। दक्खिन में सीखकर इस युवा गायक ने, आज हमें ग्वालियर की शुद्ध गायकी सुनाई है। मुझे इससे हार्दिक प्रसन्नता हुई है। यह संगीत के सच्चे पंडित हैं।" अब उनकी गणना उच्च गायकों में होने लगी।

विष्णु जी पंजाब में

दिसंबर 1898 में पंडित विष्णु दिगंबर जी ने पंजाब में प्रवेश किया। वे सर्वप्रथम पंजाब के प्रसिद्ध नगर जालंधर पहुँचे। जालंधर में प्रत्येक वर्ष एक राष्ट्रीय स्तर का संगीत सम्मेलन होता है। इसमें तीन दिन तक संगीत के कार्यक्रम चलते हैं। इसमें देश के प्रसिद्ध संगीतकार भाग लेते हैं। यह समारोह संत हरिवल्लभ जी की याद में होता है। इसलिए इसे 'हरिवल्लभ का मेला' कहा जाता है। यह मेला जालंधर के देवी-तालाव स्थान पर दिसंवर के अंतिम सप्ताह में होता है। उन दिनो यह मेला पंडित तोला राम जी आयोजित करते थे। उन्होंने पंडित विष्णु दिगंबर जी की प्रतिष्ठा सुन रखी थी। उन्होंने विष्णु दिगंबर जी को इस समारोह में आमंत्रित किया। विष्णु दिगंबर जी को पता था कि जो गायक हरिवल्लभ के मेले में अपना रंग जमा ले उसे पूरे पंजाब में प्रतिष्ठा व प्रसिद्धि मिलती है। इसलिए उन्होंने इस अवसर के लिए विशेष रूप से तैयारी की। वहाँ पर पंडित जी ने अपने गायन से श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध कर दिया। पंजाबी शैली की टप्पा गायकी से उन्होंने वाह-वाह लूट ली। हरिवल्लभ के उस मेले में आयोजकों ने पंडित जी को 'सर्वश्रेष्ठ गायक' की उपाधि से सम्मानित किया।

अब वे पंजाब में भी प्रसिद्ध हो गए।

जालंधर से पंडित जी को अमृतसर आने का निमंत्रण मिला। यह निमंत्रण सिखों की सर्वोच्च संस्था शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी की ओर से था, जिसमे उन्होंने प्रार्थना की थी कि वे 'हरिमंदिर' (दरबार साहब) में आकर संत वाणी के गायन से संगत को कृतार्थ करें। पंडित जी को मालूम था कि पंजाब के सभी गुरुद्वारे तथा अन्य कई प्रदेशों के गुरुद्वारे भी इस संस्था के अंतर्गत हैं। इसलिए दरबार साहब (गोल्डन टैंपल) में गाने से उन्हें केवल पंजाब में ही नहीं, इनके अन्य धार्मिक स्थानों में भी मान्यता एवं सत्कार मिलेगा। उन्होंने आदि ग्रंथ (श्री गुरुग्रंथ साहब) जिसमें गुरु नानकदेव, अंगद देव, अमर दास, रामदास, अर्जुन देव, तेग बहादुर के अलावा सत कबीर, फरीद, नामदेव, त्रिलोचन, जयदेव, सूरदास, रामानंद, परमानंद, व धन्ना भक्त आदि, छत्तीस संत कवियों के संगीतिक पद संग्रहित हैं। उसी पर आधारित गुरुवाणी संगीत प्रस्तुत करने का निश्चय किया। दरबार साहब में उन्होंने तीन विभिन्न रागों में शबद (पद) गायन किया। पंजाबी के प्रसिद्ध उपन्यासकार नानक सिंह ने उनके गायन से प्रभावित होकर उन पर एक उपन्यास लिखा, जिसका नाम 'पुजारी' है। इस उपन्यास में पंडित जी का जीवन चरित्र, गांधर्व महाविद्यालय की कार्यप्रणाली और योगदान का अच्छा चित्रण किया गया है।

दरबार साहब व हरिवल्लभ के मेले में गाने से पूरे पंजाव में उनकी प्रसिद्धि फैल गई। जालंधर, अमृतसर, होशियारपुर व पंजाब के अन्य नगरों में भी उन्होंने कार्यक्रम दिए। सनातन धर्म सभा, लाहौर की ओर से बुलावा आया। लाहौर उन दिनों पंजाब की राजधानी था। लाहौर की अनेक संगीत सभाओं में उन्होंने भाग लिया। अब पंजाब में उनकी लोकप्रियता चरम शिखर पर थी। उन्हें पंजाब का वातावरण पसंद आया। पंजाबी लोगों की श्रद्धा सेवा-सत्कार एवं प्रेम-भावना से वे बड़े प्रभावित हुए। पंजाब के सभी भागों से उन्हें निमंत्रण मिले। सन् 1899 तक

उन्होंने पूरे पंजाब प्रदेश में अपना प्रभाव जमा लिया।

गिरनार के बैरागी की भविष्यवाणी सत्य साबित हुई। उन्हें पंजाब का इलाका अपने कार्य के लिये अनुकूल प्रतीत हुआ। इसलिये उन्होंने सिख धर्म के पवित्र स्थान अमृतसर में बसने का निश्चय किया। वे कुछ समय इस उद्देश्य से अमृतसर में रहे।

इन्हीं दिनों उन्होंने काश्मीर में भी कुछ कार्यक्रम दिए। काश्मीर नरेश के बड़े भाई का उन दिनों देहांत हो गया था, इसलिये वहाँ अधिक कार्यक्रम नहीं हो सके। इसी बीच उन्होंने रावलपिंडी में भी गाया। वहाँ की संगीत सभाओं से उन्हें काफी धन, यश व सम्मान प्राप्त हुआ। इसके पश्चात उन्हें भरतपुर रियासत का निमंत्रण मिला। वहाँ उन दिनों महाराजा फरीदकोट की राजमाता रह रही थीं। राजमाता के निवास पर भी उनका गायन हुआ। राजमाता ने पडित जी को स्वर्ण पदक एवं शाल से सम्मानित किया।

इनके मित्र माया शंकर जी ने भी भरतपुर में कुछ कार्यक्रम आयोजित किये। इन सभाओं में पंडित जी अपनी कलाएँ एवं रागों के संबंध में व्याख्या भी करने लगे। इससे आम जनता में संगीत की समझ बढ़ने लगी। ऐसे अनेक कार्यक्रमों में पंडित जी ने संगीतशास्त्र के विभिन्न विषयों पर भाषण दिये। अब एक वक्ता के रूप में भी उनका उत्साह और आत्मविश्वास बढ़ने लगा।

सन् 1899 के अंतिम मास में आप, बीकानेर (राजस्थान) गये। वहाँ के लोगों ने अच्छा सम्मान दिया। संगीत सभाएं भी हुई। तत्पश्चात पंडित जी जोधपुर आ गये। वहाँ पंडित जी की भेंट बैंड-मास्टर मि. जेम्स से हुई। वह पंडित जी के गाने से बहुत प्रभावित था। दोनों में मित्रता हो गई। एक दिन उसने बताया कि संगीत लिपि द्वारा हम किसी भी रचना को सीख सकते हैं। संगीत की धुनों को सुरक्षित भी रख सकते हैं। उनकी संगीत लिपि को देखकर गा-बजा सकते हैं। परंतु भारतीय संगीत में यह सुविधा नहीं है।

पंडित जी उन दिनों संगीत-लिपि पर ही विचार कर रहे थे। उन्होंने इस

संबंध में अनेको संस्कृत ग्रंथों का अध्ययन किया। प्राचीन ग्रंथों में उच्चारण एवं स्वरों की रूपरेखा के कुछ चिह्न अवश्य थे। परंतु उन्हें देखकर गाया-बजाया नहीं जा सकता था। इसलिये अनेक नए चिह्नों को विकसित करना था।

पंडित जी ने पाश्चात्य संगीत-लिपि का अध्ययन भी किया। उसी के आधार पर नये चिह्नों का विकास किया। परंतु अभी काम अधूरा था। इसके लिए एकाग्रचित्त होने की आवश्यकता थी। उनके सामने संगीत शिक्षा को सरल एवं सुव्यवस्थित करने की अनेक योजनाएं थीं। वे चाहते थे कि संगीत पर पुस्तकें लिखी जाएं, जिससे संगीत के विद्यार्थियों को अधिक सुविधा मिल सके। वे संगीत को शिक्षा का अनिवार्य अंग मानते थे। स्कूलों-कालेजों में संगीत को एक विषय के रूप में मान्यता दिलाना चाहते थे।

4

संगीत लिपि और ग्रंथ रचना

उपरोक्त कार्यों को संपूर्ण करने का उन्हें शीघ्र ही एक अवसर प्राप्त हो गया। उन्हीं दिनों उन्हें प्रसिद्ध संत बाबा खेम सिंह वेदी की ओर से निमंत्रण मिला। इस निमंत्रण में उन्होंने पंडित जी से अपने पुत्रों को संगीत शिक्षा देने की प्रार्थना की। बाबा खेम सिंह जी वेदी गुरु नानक देव जी के वंशज थे। इसलिए सिख-समाज में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। उन्हें गुरुओं की तरह मान-सत्कार दिया जाता था। वे बड़े संगीत प्रेमी, गुण सम्पन्न व आध्यात्मिक व्यक्ति थे।

पंडित जी ने उनके निमत्रंण को स्वीकार कर लिया। उन्हें यह अवसर ईश्वरीय वरदान के रूप में प्रतीत हुआ। बाबा खेम सिंह जी वेदी उन दिनों मिंटगुमरी जिले के ओकाड़ा गांव में रहते थे। निमंत्रण-पत्र में पंडित जी से उनके निवास स्थान पर, संगीत शिक्षा देने की प्रार्थना की गई थी। इसके लिए पंडित जी के रहने एवं खाने-पीने की अलग व्यवस्था, विशेष रूप से की गई थी। पंडित जी अमृतसर से ओकाड़ा चले गए। प्रातः दो घंटे वे संगीत शिक्षा देते। शेष समय वे अपने अधूरे कार्यों को पूरा करने में लगाते। संगीत विद्यालयों की स्थापना का संकल्प भी यहीं रहकर लिया। संगीत लिपि को संपूर्ण किया। अनेक रागों की संगीत लिपियां वहाँ रहकर तैयार कीं। अब इनको पुस्तक रूप में छपवाने की सोचने लगे।

ओकाड़ा में 8-9 महीने रहकर पंडित जी ने संगीत लिपि का विकास कर

लिया। यह सन् 1900 की बात है। यहीं पर उन्होंने 'संगीत बाल प्रकाश' (तीन भाग) पुस्तक लिखी। अब उन पुस्तकों के प्रकाशन के लिए वे लाहौर पहुंचे। लाहौर इन दिनों पुस्तकों के प्रकाशन का मुख्य केन्द्र था। पंडित जी लाहौर में रहकर पुस्तकों के प्रकाशन में जुट गए। साथ ही साथ कुछ शिष्यों को संगीत शिक्षा भी देने लगे।

प्रथम संगीत विद्यालय की स्थापना

उन्हें इस बात का विचार आया कि लाहौर में संगीत विद्यालय खोलना चाहिए। इस विचार को बाबा खेम सिंह वेदी ने पसंद किया और सहयोग देने का वचन भी दिया। पंडित जी वहाँ इस दिशा में कार्य करने लगे। यहीं पर उन्होंने संगीत विद्यालय की स्थापना की जिसका नाम गांधर्व महाविद्यालय रखा गया। इसका उदघाटन सन् 1901 की 5 मई को जस्टिस पी.जी. चैटर्जी ने किया। यह पहला संगीत महाविद्यालय था। पहले तीन दिन वहाँ कोई दाखिला लेने नहीं आया। क्योंकि उस समय संगीत पढ़ना-पढ़ाना, पहले तो प्रचलन में ही नहीं था, दूसरे उसे अच्छा नहीं माना जाता था। परंतु पंडित जी निराश नहीं हुए। वे और उनके अध्यापक (शिष्य) निश्चित समय पर वहाँ उपस्थित रहते और संगीत का अभ्यास करते।

15-20 दिनों में ही 25 विद्यार्थी दाखिल हो गए। पंडित जी का उत्साह बढ़ने लगा, परंतु इन्हीं दिनों उन्हें अपने पिता की बीमारी का तार मिला। वे न जा सके। दूसरा तार मिला "पिताजी का निधन हो गया।" अब उनके दुःख का पारावार नहीं था। मित्रों ने उन्हें घर जाने की सलाह दी। पंडित जी सोचने लगे कि भगवान मेरी परीक्षा ले रहा है। जब मित्रों ने अधिक जोर डाला कि आपको जाना चाहिए तो वे बोले, "मेरे जाने से पिताजी तो वापिस आएँगे नहीं। हाँ मेरे वापिस आने तक विद्यालय जरूर चौपट हो जाएगा। इस वक्त विद्यालय की देखभाल जरूरी है। मैं विद्यालय छोड़कर अभी नहीं जा सकता।"

धीरे-धीरे गांधर्व महाविद्यालय में विद्यार्थियों की संख्या काफी बढ़ गई। फीस बहुत कम रखी थी। इसलिए आमदनी कम और खर्च अधिक हो रहा था। इसलिए पंडित जी को ब्याज पर कुछ ऋण भी लेना पड़ा। जिससे आर्थिक संकट बढ़ता गया।

इन्हीं दिनों उन्हें महाराजा काश्मीर की ओर से निमंत्रण मिला। उन्हें लगा कि भगवान ने ही उनकी मदद की है। वे काश्मीर गए। महाराजा के दरबार में उन्होंने गाया। उनके गायन से महाराजा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने एक शाल, स्वर्ण पदक, कुछ वस्त्र, तथा एक हज़ार रुपये नगद प्रदान किए।

काश्मीर से लौटकर उन्होंने तत्काल ऋण चुकाया और महाविद्यालय की व्यवस्था को सुधारा। अब महाविद्यालय की आर्थिक स्थिति ठीक थी। विद्यार्थियों की संख्या भी बढ़ रही थी। कुछ पुस्तकें भी प्रकाशित होने लगी थीं।

अब विद्यार्थियों की संख्या 50 से ऊपर हो गई, जिससे जगह कम पड़ने लगी। इसलिए पंडित जी ने तेरह रुपये महीने वाला किराये का मकान छोड़कर तीस रुपये महीने पर एक बड़ा मकान किराये पर ले लिया। कई लोगों ने उनसे कहा कि यह मकान न लें। यह बड़ी अशुभ जगह है। परंतु पंडित जी अपने निर्णय पर दृढ़ रहे। इस मकान में आते ही उनके सहयोगी गुरुदेव पटवर्धन की पत्नी का देहांत हो गया। वे अपनी पत्नी की अस्थियाँ प्रवाहित करने गए। लौटकर वापिस नहीं आए। कुछ दिनों बाद एक शिक्षक श्री सखाराम (पंडित जी के शिष्य) निमोनिया के बुखार से चल बसे। तीन दिनों बाद पंडित जी के एक और साथी श्री बलवंत पेंडसे (जिन्होंने 1896 में इनके साथ मिराज छोड़ा था) की माता का देहांत हो गया। वे भी लाहौर छोड़कर चले गए। लगातार इतनी दुःखद घटनाओं से पंडित जी विचलित से हो गए। लोगों ने दबाव डाला कि वे जगह बदल लें। अनेक मित्रों ने कोशिश करके नई जगह भी देख ली और शीघ्र ही पंडित जी को गांधर्व महाविद्यालय वहाँ ले जाने पर राजी कर लिया। वे मान गये। अब फिर सुचारू रूप से कार्य चलने लगा।

इन्हीं दिनों महाराजा कपूरथला ने गांधर्व महाविद्यालय में आकर वहाँ का कार्य देखा। उन्होंने महाविद्यालय की जैसी तारीफ़ सुनी थी वैसी ही पाई। वे विद्यालय देखकर बड़े प्रसन्न हुए और 400 रुपये वार्षिक अनुदान दिया। जिससे महाविद्यालय का कार्य सुचारू ढंग से चल सके और अपने उद्देश्यों को पूरा कर सके।

उन दिनों बसंत के मौसम में अनेकों रियासतों के राजा-महाराजा लाहौर आया करते थे। पंडित जी ने उचित अवसर पर एक संगीत समारोह का आयोजन किया। जिसमें बड़े-बड़े राजा-महाराजा, रईस तथा व्यापारियों को बुलाया गया। इस समारोह में भारी संख्या में लोगों ने भाग लिया। नगर के गणमान्य व्यक्तियों एवं कुछ अंग्रेज अधिकारियों को भी बुलाया गया। इस अवसर पर 'दि ट्रिब्यून' के संपादक, काली प्रसाद चटर्जी ने पंडित जी के कार्यो की भूरि-भूरि प्रशंसा की और उनके संगीत-शिक्षण के लिए हर सभव सहायता देने का वचन दिया। वहाँ पर उपस्थित सभी लोगों ने पंडित जी के कार्यो की महत्ता को स्वीकार किया। सभा-स्थल पर ही दो हज़ार रुपये की सहयोग राशि एकत्रित हो गई। इस अवसर पर महाराजा काश्मीर ने एक सौ पचास रुपये मासिक अनुदान की घोषणा की।

कुछ समय बाद एक उल्लेखनीय घटना घटी। सन् 1904 की बात है। अंग्रेजों से देश को आजाद कराने की माँग को लेकर लाहौर में एक जुलूस एवं सभा का आयोजन किया गया। जुलूस में उम्मीद से अधिक भीड़ उमड़ पड़ी। जुलूस के अंत में एक सभा होनी थी। जुलूस की अपार भीड़ देखकर नेताओं के हाथ-पैर फूल गये। उन्हें लगा कि भीड़ पर काबू पाना उनके लिये मुश्किल होगा। एक नेता ने जाकर पंडित जी से प्रार्थना की कि आज के जलसे में बड़े-बड़े नेताओं के भाषण होने वाले हैं। भीड़ इतनी है कि कुछ करते नहीं बनता। आपकी गान विद्या को तब मानें अगर आप इस भीड़ को शांत कर दें।

पंडित जी मुस्कुराए और साथ चल दिये। मंच पर खड़े होकर उन्होने 'वंदे मातरम्' गाना आरंभ कर दिया। सारी भीड़ शांत हो गई। इसके बाद उन्होंने

'भारत हमारा देश है' और 'घर-घर की फूट बुरी है' इत्यादि देश-भक्ति के गीत गाए। जहाँ कुछ देर पहले घना कोलाहल था, वहाँ अब संगीत की स्वर लहरियाँ, लहराने लगीं। सभा स्थल पर ऐसा लग रहा था कि, "संगीत का सागर लहरा रहा हो"। सभी, पंडित जी की अद्भुत गायन-शक्ति से अभिभूत हो गए और उनकी प्रशंसा करने लगे।

इसी प्रकार का चमत्कार सन् 1921 में काँग्रेस अधिवेशन में हुआ। यह अधिवेशन अहमदाबाद में हुआ। इस अधिवेशन में महात्मा गांधीजी आने वाले थे। अहमदाबाद में हुए इस अधिवेशन में गांधीजी को देखने के लिए भारी भीड़ उमड़ पड़ी। गांधीजी की गाड़ी भीड़ में फँस गई। उसे आने-जाने का रास्ता ही नहीं मिल रहा था। कार्यकर्ता घबरा उठे, सारी व्यवस्था भंग हो गई। पंडित जी ने जब यह देखा तो वे गांधीजी की गाड़ी की छत पर चढ़ गए और जोर से 'गांधीजी की जय' के नारे लगाने लगे। नारे लगाते-लगाते पंडित जी ने "रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीता राम" भजन गाना आरंभ कर दिया। भीड़ भी साथ में गाने लगी। भीड़ पर संगीत का जादू सिर चढ़कर बोलने लगा। इसी बीच गांधीजी को रास्ता मिल गया। वे मंच पर पहुँच गए। अधिवेशन सफलतापूर्वक संपन्न हुआ।

पंडित जी की देश-भक्ति

पंडित विष्णु दिगंबर जी को सभी कांग्रेस अधिवेशनों में बुलाया जाता था। वे वहाँ, 'वंदे मातरम्' और अन्य कई राष्ट्रीय गीत सुनाया करते थे। यह उनका स्वाधीनता संग्राम में विनम्र योगदान था। वे देश-भक्ति की भावना से ओत-प्रोत थे। वे संगीत के माध्यम से देश का सम्मान बढ़ाने में हमेशा साथ लगे रहे। कांग्रेस अधिवेशनों में उन्हें विशेष सम्मान के साथ मंच पर बिठाया जाता था। लाला लाजपत राय, गांधीजी, स्वामी श्रद्धानन्द, श्री राजेन्द्र प्रसाद व महात्मा हंसराज जी आदि अनेक नेता इनके प्रशंसक थे। पंडित जी इसे अपने सम्मान की अपेक्षा संगीत का सम्मान मानते थे।

एक बार उन्होंने किसी राष्ट्रीय सभा में राग शंकरा के अंतर्गत......."स्वाधीनता के हैं पुजारी, हमने यही इक टेक धारी। परदास्तां की यातना से, अब मुक्त हो जननी हमारी।।" गीत गाया। राष्ट्रीय गीतों के भावपूर्ण गायन से, लोगों में आजादी की भावना बढ़ने लगी। इसको अंग्रेज सरकार ने गंभीरता से लिया। सरकार ने इनके कुछ गीतों पर पाबंदी लगा दी। ब्रिटिश सरकार के कई जासूस भी इन पर नज़र रखने लगे। परंतु फिर भी यदा-कदा वे राष्ट्रीय गीत गाते रहे।

गांधर्व महाविद्यालय दिनों-दिन उन्नति करने लगा। अब यह हर तरह सक्षम था। महाविद्यालय ने अपना एक प्रिंटिंग प्रेस भी लगा लिया था। इस प्रिंटिंग प्रेस से पंडित जी ने 'संगीतामृत-प्रवाह' (हिंदी) मासिक पत्र आरम्भ किया। जिसमें संगीत गतिविधियों के अलावा, महाविद्यालय के समाचार, पडित जी की यात्राएं, निबंध व संगीत रचनाएं प्रकाशित होती थीं। इसमें देश-भक्ति गीतों एवं शास्त्रीय गीतों की संगीत लिपियां भी छपती थीं।

पंडित जी, अपने गुरु श्री बाल कृष्ण बुवा जी से मिलने गए। अत्यंत व्यस्त रहने के कारण वे बहुत समय से उन्हें मिल नहीं पाये थे। आशीर्वाद पाने के लिए लालायित थे। मिलते ही उन्होंने चरण स्पर्श किये और गुरुजी प्रणाम कहा। श्री बालकृष्ण बुवा जी ने उन्हें चरणों से उठाकर अपने कंठ से लगा लिया। सर्वप्रथम प्रश्न किया, "रियाज करते हो कि नहीं ?" "हाँ ! गुरुदेव" का वाक्य सुनते ही फिर हाल-चाल पूछने के पश्चात उनके महाविद्यालय के बारे में पूछा। तब विष्णु जी ने अपने कार्यों की जानकारी भी दी और 'गुरु दक्षिणा' के रूप में एक हजार की 'धन-राशि' गुरु-चरणों में भेंट की। गुरुजी अपने शिष्य की उन्नति देखकर बहुत प्रसन्न हुए। गुरुजी गद्‌गद् हो उठे। उन्होंने विष्णु दिगंबर को 'यशस्वी भवः' का आशीर्वाद दिया।

आओ ! एक बार फिर लाहौर के गांधर्व महाविद्यालय की ओर चलें। इन दिनों इस विद्यालय में अनेकों रियासतो के राजाओं की ओर से बहुत से विद्यार्थी

संगीत शिक्षा ले रहे थे। उनको छात्रवृत्ति मिलती थी। यह छात्रवृत्ति राजाओं की ओर से थी। परंतु गरीब विद्यार्थियों का सारा खर्चा पंडित जी वहन करते थे। अब तक कई होनहार विद्यार्थियों ने शिक्षक पद ग्रहण कर लिया था। विष्णु दिगंबर जी अब भी स्वयं अभ्यास करते व छात्रों को भी खूब अभ्यास करवाते थे। सारा कार्य बहुत सुचारू रूप से चल रहा था।

इन दिनों पंडित जी ने दाढ़ी बढ़ा ली थी। एक घोड़ा गाड़ी भी रख ली थी। देखने में पूरे पंजाबी नजर आते थे। सायंकाल को घोड़ा गाड़ी पर सैर करने जाते। कुल मिलाकर ये पांच-सात वर्ष उनके सुख से बीते।

अनुशासन

लाहौर के गांधर्व महाविद्यालय की इमारत काफी बड़ी थी। प्रातःकालीन और सायंकालीन कक्षाएँ लगती थीं। खाली समय मे छात्र संगीत का अभ्यास करते रहते थे। एक दिन पंडित जी कहीं बाहर गए हुए थे। कुछ युवा छात्र वहाँ अभ्यास कर रहे थे। बैठे-बैठे उनको एक शरारत सूझी। वे तबले को 'पैरोडी' बनाने लगे। गायन, वादन, तथा नृत्य तीनों के लिए तबला, संगत के रूप में एक प्रतिष्ठित वाद्य माना जाता है। इसकी अपनी एक अलग शब्दावली होती है। उन छात्रों ने तबले के एक बोल को बिगाड़ कर इस प्रकार बोलना आरंभ कर दिया–

"पान सुपारी चूना कत्था धा आ।"
"पान सुपारी चूना कत्था धा आ।।"

जबकि वास्तविक बोल थे–

"तिट कता गदि गन धा ऽ।
तिट कता गदि गन धा ऽ।।"

उस वक्त सारे छात्र हँसी-मजाक के मूड में थे, इसलिये शिक्षकों ने भी उसे हँसी में टाल दिया। इससे छात्रों ने उत्साहित होकर और भी कई बोलों को

बिगाड़ कर, उनकी जगह कुछ अशिष्ट शब्द-प्रयोग आरंभ कर दिये। इधर पंडित जी आ गए और उन्होंने इस प्रकार के भद्दे शब्द सुन लिए। अभी शिक्षक उन छात्रों को रोकने ही वाले थे कि पंडित जी गरज पड़े।

'अरे ! तुम लोगों को शर्म नहीं आती। इस प्रकार तबले की दुर्गति कर रहे हो। यह देवी-देवताओं की कला है। सरस्वती माँ की ज़रा भी लाज नहीं तुमको। क्या यही सब तुम लोग अपने शिष्यों को सिखलाओगे ?" क्रोध में उन्होंने छात्रों के एक प्रमुख वक्ता को दो-तीन तमाचे भी लगा दिये। शिक्षकों को डाँट पिलाई। क्रोध शांत होने पर सभी को अपने पास बुलाकर कहने लगे–

"तुम लोगों का प्रत्येक पल संगीत कला के अर्जन में ही बीतना चाहिए। इस कला को 'पैरोडी' बनाने या इसमें अश्लील शब्दों के प्रयोग को माँ सरस्वती कभी सहन नहीं करेगी। संगीत सीखने वाले छात्रों व शिक्षकों का व्यवहार संतुलित व आदर्श होना चाहिए। फिर कभी ऐसी गलती न करना।"

सभी छात्रों ने अपनी गलती को स्वीकार करते हुए पंडित जी से क्षमा याचना की। तब पंडित जी ने उन्हें कंठ से लगाकर कहा "मुझे तुमसे ऐसी ही उम्मीद थी।"

वे चरित्र व अनुशासन के मामले में सतर्क रहते थे। एक बार एक छात्र ने छात्रालय में कोई गंभीर दुर्व्यवहार किया, तो उसकी शिकायत मिलने पर पंडित जी ने तुरंत उसे विद्यालय से निकाल दिया। वे संगीत का परम लक्षण भक्ति एवं चरित्र-निर्माण मानते थे।

विद्यालय का अनुशासन बड़ा कठोर था। निश्चित समय पर सभी कार्य होते थे। अन्य स्कूलों, कालेजों की तरह घंटी बजने पर हर कार्य होता था। अब कुलीन घरों के बच्चे भी महाविद्यालय में दाखिल होने लगे। इस समय तक संगीत बाल प्रकाश के तीनों भाग प्रकाशित हो चुके थे और संगीत बाल बोध के पाँच भाग प्रकाशित हो रहे थे। आगे की पुस्तकों का लेखन कार्य आरंभ हो चुका था।

पंडित जी के संगीत ग्रंथों की लोकप्रियता भी बढ़ रही थी।

इस काल की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि गांधर्व महाविद्यालयों में छात्राएँ भी आने लगी थीं। यह सब पंडित जी के व्यक्तित्व और संगीत का प्रभाव था। उन्होंने भक्ति संगीत के माध्यम से, समाज की संगीत चेतना को जगाया। लोगों को बताया कि, "वैदिक और पौराणिक काल की गृह-लक्ष्मी संगीत का ज्ञान रखती थी। उस काल के यज्ञों, पर्वो तथा उत्सवों में संगीत का आयोजन होता था। समन और समज्जा नाम के मेलों में युवक-युवतियों की संगीत प्रतियोगिताएं होती थीं।"

नारियों मे संगीतिक चेतना जगाने हेतु पंडित जी ने सोचा कि जब तक स्कूलों-कालेजों में लड़कियों को संगीत शिक्षा नहीं दी जाएगी, तब तक यह कला घर-परिवार व जन-जीवन तक नही पहुँचेगी। उन्होंने विभिन्न संस्थाओं के प्रबंधकों को संगीत विषय आरंभ करवाने की प्रेरणा दी। फलस्वरूप स्थानीय कन्या महाविद्यालय (लाहौर) ने संगीत शिक्षक की माँग की, जिसे पंडित जी ने तुरंत पूरा किया

पत्नी भी उनकी संगीत विदुषी थीं। उन्होने पंडित जी को जीवन भर अपना सहयोग दिया। लेकिन उन्हें कभी संतान सुख नहीं मिला। उनकी पहली संतान सन् 1901 में हुई। यूं तो उनके बारह संतानें हुई। लेकिन सभी तीन-चार साल की अल्पायु में काल कवलित होती गई। उनके अंतिम 12 वें पुत्र "दत्तात्रेय" से ही उन्हे संतान सुख मिल सका। दत्तात्रेय का जन्म 18 मई, 1921 मे हुआ। वे ही दीर्घायु हुए दत्तात्रेय, पडित जी के समान ही संगीत कला में निपुण सिद्ध हुए। उन्होने खूब यश अर्जित किया। इन्हीं दिनों कन्या महाविद्यालय जालंधर की ओर से भी माँग आई पंडित जी ने अपनी पत्नी को वहाँ भेजा। परन्तु वे बीमारी के कारण वापस आ गई उनकी जगह पर उन्होंने अपने सुयोग्य शिष्य श्री देवी चन्द्र को वहाँ भेज दिया श्री देवी चन्द्र ने वहाँ सन् 1903 में संगीत शिक्षा आरंभ की। वे जीवन के अंतिम समय तक वहाँ कुशलतापूर्वक कार्य करते रहे।

लाहौर के डी.ए.वी. कालेज में उन दिनों श्रद्धाराम फिल्लौरी द्वारा रचित आरती "ओम जय जगदीश हरे" को प्रार्थना के रूप में गाया जाता था। पंडित विष्णु दिगंवर जी उस प्रार्थना को सिखाने जाते थे। लाला लाजपत राय व महात्मा हंसराज के अनुरोध पर, कुछ समय पंडित जी ने वहाँ पर धार्मिक व देश-भक्ति के गीत भी सिखलाये। इसके पश्चात गांधर्व महाविद्यालय में इसी आरती को प्रार्थना के रूप में गाया जाने लगा। "वंदे मातरम्" को भी पंडित जी ने काफी राग में स्वरबद्ध करके प्रार्थना के रूप में प्रचलित किया। वाद मे इसे राष्ट्रीय गीत के रूप गें मान्यता प्राप्त हो गई।

आरती और प्रार्थना यह दोनों गीत जिस धुन पर गाए जाते हैं, इनकी स्वर रचना प. विष्णु दिगंवर जी ने की थी। "सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्ताँ हमारा" समूह गान की धुन पडित जी ने भी वनाई थी। वाद् में फिल्म वालों ने इसमें कई फेर वदल कर दिए। इन वातों का वहुत कम लोगों को पता है। यथार्थ तो यह है कि उन्होंने सैकड़ों ही धार्मिक व देश-भक्ति के गीतों की "धुने" वनाई, सिखाई और उनकी सगीत लिपियाँ प्रकाशित कीं। वे वास्तव में एक आदर्श गायक या शिक्षक ही नही थे वल्कि एक महान् 'वाग्गेयकार' भी थे। वाग्गेयकार उसे कहते है जिसे शब्द-रचना व स्वर-रचना, दोनो का ज्ञान हो। संगीत में वाग्गेयकार को एक विशेप गुण के रूप में माना जाता है।

सन् 1905 में अजमेर मे गणेशोत्सव चल रहा था। पंडित जी भी वहाँ आमंत्रित थे। इनसे पूर्व वहाँ जयपुर की एक नर्तकी जो गाती भी थी, उसका कार्यक्रम था। उसने पडित जी के वाद्यों के वक्सों को देखते हुए व्यंग्य किया "यह किसकी कब्रें हैं ? इन तावूतों का क्या होगा ? देखती हूँ कैसे रंग जमाते हैं।"

उस नर्तकी को इस वात का अहंकार था कि उसके कार्यक्रम के वाद पडित जी का कार्यक्रम सफल नही होगा। परंतु, लोग पंडित जी को सुनने के लिए

लालायित थे। वे मंच पर आए। बक्सों से संगीत वाद्य निकाले जो पहले से ही स्वरबद्ध थे। जबकि उस काल के संगीतकार आधा-आधा घंटा मंच पर स्वरबद्ध (ट्यूनिंग) करने के लिए लगाते थे। पंडित जी ने गायन आरंभ करने से पूर्व श्रोताओं को हाथ जोड़कर नमस्कार किया और बोले—"मैं नाद का उपासक हूँ। सरस्वती माँ का पुजारी और संगीत-सेवक हूँ। मेरा नाज़-नखरों से कोई वास्ता नहीं। गुरु-कृपा या आशीर्वाद से ग्वालियर घराने की गायकी सुनाने लगा हूँ। आशा है आप शांति से सुनकर मेरी तपस्या को सफल बनायेंगे। मैं यहाँ रंग जमाने नहीं रस बरसाने आया हूँ। अमृत पिलाने आया हूँ, मदिरा नहीं।"

लोगों ने भरपूर तालियों से स्वागत किया। पंडित जी ने खूब जमकर गाया। तीन घण्टे के समय का पता ही न चला कब बीत गया। कार्यक्रम के अंत में उस नृर्तकी ने पंडित जी के पाँव-पड़कर क्षमा मांगी, और अपने व्यवहार के लिए खेद प्रकट किया।

अजमेर के पश्चात पंडित जी उदयपुर गए। वहाँ के महाराजा ने गाने के लिए केवल पंद्रह मिनट दिए। पंडित जी ने महाराजा की पसंद का एक सूरदास का भजन गाया और पूरे पंद्रह मिनट में समाप्त कर दिया। वे समय के बड़े पाबंद थे। महाराजा ने पंद्रह मिनट और गाने को कहा तो पंडित जी ने एक और भजन गाया। महाराजा आनंद-विभोर हो उठे। कहने लगे, "अरे ! विष्णु दिगंबर! आप तो संगीत के लहराते हुए सागर हैं। मैं आपके गाने से आनंदित हुआ। इसलिए एक भजन और सुनाओ।" पंडित जी ने एक भजन और सुनाया। इस प्रकार महाराजा ने 45 मिनट का गायन सुना और पंडित जी के गायन, श्रोता की पसंद, व समय की पाबंदी आदि गुणों की प्रशंसा की। साथ में धन राशि, वस्त्र व अन्य भेंट आदि देकर सम्मानित किया। वहाँ पर पंडित जी ने तीन भजन गाए थे : "अब की टेक हमारी" "सुमरो मैंने निर्बल के बलराम" और "मईया मैं नहीं माखन खायो"। पंडित जी का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली था। ऊँचा लम्बा

कद, विशाल मस्तक, बड़ी-बड़ी आँखें, स्वस्थ शरीर, प्रभावशाली आवाज़। यह सब देखकर ये किसी राजकुमार से कम नहीं लगते थे। एक बार की घटना है। पंडित जी अमृतसर स्टेशन पर फर्स्ट-क्लास के डिब्बे से ज्यों ही उतरे तो एक पुलिस अफसर ने उन्हें किसी रियासत का राजकुमार समझ कर बड़ी मुस्तैदी से "सैल्यूट" किया। तब पंडित जी ने भी राजकुमार जैसी अदा से केवल गर्दन हिला दी। बाद में उस अफसर को पता चला कि यह केवल गायकों के ही राजकुमार न थे, बल्कि संगीत के लहराते सागर थे।

सन् 1906 को जार्ज पंचम जब भारत आए, तो उनके स्वागतार्थ अनेकों महानगरों में समारोह आयोजित किए गए। लाहौर में भी एक समारोह होने वाला था। पंडित विष्णु दिगंबर जी चाहते थे कि इस राष्ट्रीय महत्व के समारोह में, अंग्रेजों के सामने भारतीय संगीत का प्रदर्शन किया जाए। कुछ प्रयत्न करने से यह अवसर उन्हें प्राप्त हो गया। उन्हें वहाँ गाने के लिए पंद्रह मिनट दिए गए। पंडित जी ने निश्चित समय के बीच अपना गायन समाप्त कर दिया। इससे अंग्रेज अधिकारियों व प्रबंधकों ने प्रसन्नता व्यक्त की। पंडित जी ने इस बात का संतोष अनुभव किया कि ऐसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम में शास्त्रीय संगीत को मान्यता दिलाने में सफलता मिली। वे संगीत को सरकारी व गैर सरकारी शिक्षण संस्थाओं में सम्मानित स्थान दिलवाना चाहते थे।

सन् 1907 में श्री गोपाल कृष्ण गोखले एक बार गांधर्व महाविद्यालय के समारोह में आए तो उन्होंने उस समारोह में विचार व्यक्त किए...... "एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण ने पंजाब में रहकर संगीत शिक्षा का कार्य किया है। मैं इससे अत्यंत प्रसन्न हुआ हूँ। मुझे विश्वास है कि भारतीय संगीत ही एक ऐसा सूत्र है जो उत्तर-दक्षिण व पूर्व-पश्चिम को मिला सकता है। यह एकता व प्रेम का संदेश देने वाली कला है। इसलिए सभी लोगों को संगीत सीखना अथवा सुनना चाहिए।"

अब महाविद्यालय में छात्रों की संख्या पाँच सौ हो गई थी। पुराने शिष्यों में से कुछ मंच गायक बन गए थे। कुछ शिष्यों को पंडित जी ने शिक्षक पद पर नियुक्त कर दिया था। इस काल में प्रमुख शिष्य श्री बाबू राव गोखले (उनकी बहन के पुत्र), श्री धुंडिराज पलुस्कर (उनके भाई के पुत्र), श्री वी.एन.पटवर्धन, रघुनाथराय पटवर्धन, शंकर राव पाठक, बी.ए. कशालकर, नारायण मोरेश्वर खरे संगीत मिशनरी (स्वयंसेवक) के रूप में कार्य करने लगे थे। बाद में श्री शंकर राव व्यास, नारायण व्यास, बावनराव पाध्ये, पं. ओंकार नाथ ठाकुर ने संगीत शिक्षा लेकर प्रतिष्ठित गायकों के रूप में ख्याति अर्जित की।

उन दिनों गांधर्व महाविद्यालय में 25-30 संगीत शिक्षकों (मिशनरियों) के अलावा पंडित जी के परिवार एवं संबंधियों सहित लगभग 50 लोग एक साथ रहते थे। छात्रालय में 50-60 लोगों का भोजन एक साथ समान रूप से तैयार होता था। सभी शिष्य अपने कर्तव्य का पालन करते हुए, वहाँ के सभी कार्य स्वयं करते थे। पंडित जी 'खुराक' का पूरा ध्यान रखते थे। रोजाना आधा किलो दूध पीना हरेक के लिए जरूरी था। वे स्वास्थ्य के प्रति सचेत थे।

पंडित जी संगीत शोध में भी रुचि रखते थे। परंतु उन दिनों संगीत पर शोध के ग्रंथ उपलब्ध नहीं थे न ही कोई संगीत-पुस्तकालय था। इसलिए जब कोई विद्वान मिलता तो वे, संगीत की शक्ति व प्रभाव के बारे में बातचीत करते थे। दीपक राग से दीये जलना, मेघ-मल्हार राग से वर्षा का होना, हिंडोल से झूला चलना, बीन पर सर्प का झूमना, और 'तोड़ी' राग से मृगों का आगमन, इत्यादि बातों का वे वैज्ञानिक उत्तर चाहते थे। वे संगीत-शास्त्र के सिद्धांतों का तर्क-संगत उत्तर पूछते थे। परंतु शोध कार्य के लिए न तो उनके पास समय था और न ही वे सक्षम थे।

गांधर्व महाविद्यालय में पुस्तकों द्वारा एक निश्चित पाठ्यक्रमानुसार योजनाबद्ध रूप में संगीत की शिक्षा होती थी। संगीत बाल बोध के पाँच भाग प्रकाशित हो

चुके थे। अब पंडित जी ने अपना छापाखाना भी लगा लिया। यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। उसके बाद पंडित जी ने संगीतिक वाद्यों का कारखाना स्थापित किया जिसमें नये वाद्यों का निर्माण व पुराने वाद्यों की मरम्मत होती थी। महाविद्यालय की उन्नति शिखर पर थी।

किसी विद्यार्थी को पास बिठाकर 6-7 घंटे लगातार पुस्तक-लेखन का कार्य करवाते थे। वे जुबानी बोलते जाते, शिष्य लिखता जाता। पंडित जी इतनी लंबी बैठक से नहीं थकते थे। जब एक शिष्य थक जाता तो दूसरे को बैठा लेते। यह लेखन-कार्य भी किसी तपस्या से कम नहीं था।

राग-प्रवेश (18 भाग) पुस्तक भी प्रकाशित हो रही थी। इस प्रकार गांधर्व महाविद्यालय की ख्याति फैलती गई। पंडित जी अपने कार्य को 'नारद का मिशन' कहते थे। जिसका भाव था कि जैसे 'नारद-ऋषि' को सभी जगह अपने जाने की व 'भक्ति-संगीत' प्रस्तुत करने की छूट थी वैसे ही भारतीय संगीतकारों को अपने मिशन का प्रचार करने के लिए भी छूट होनी चाहिए। इसलिए वे पूरे भारत में संगीत प्रचार करना चाहते थे। जिसके लिए कम से कम महानगरों में विद्यालयों की स्थापना जरूरी थी।

पंजाब में पूरे आठ वर्ष कार्य करने के पश्चात अब पंडित जी सोचने लगे कि उन्होंने पंजाब में संगीत के बीज बो दिए हैं। फसल तैयार है। उनके शिष्य इस कार्य को आगे बढ़ा सकते है। इसलिए अब बंबई जैसे महानगर में कार्य आरंभ करना चाहिए। इस उद्देश्य से उन्होंने अपने शिष्य बी.ए. कशालकर को पूर्व तैयारी के लिए वहाँ भेज दिया। अपने कुछ शिष्यों को लाहौर के गांधर्व महाविद्यालय की जिम्मेदारियां सौंप दी और कुछ शिष्यों को बंबई अपने साथ चलने के लिए आदेश दिया। बंबई में एक अन्य गांधर्व महाविद्यालय स्थापित करने की तैयारी होने लगी।

5

बंबई में गांधर्व महाविद्यालय

इन दिनों बंबई में गांधर्व महाविद्यालय की स्थापना के लिए पंडित जी के शिष्य प्रयत्नशील थे। बी.ए. कशालकर वहाँ से पत्र द्वारा संपर्क बनाए हुए थे। योजना के अनुसार सर्वप्रथम वहाँ के संगीत प्रेमियों से तालमेल करना था। फिर संगीत सभा में पंडित जी का गायन, और उसके बाद गांधर्व महाविद्यालय स्थापित करने का विचार था। पंडित जी के समकालीन श्री विष्णु नारायण भातखण्डे उन्हीं दिनों बंबई में थे। वे पं. विष्णु दिगंबर जी के कार्यो से प्रभावित थे और संगीत शिक्षा व प्रचार के लिए वचनबद्ध थे। इसलिये उनसे भी तालमेल किया गया। उन्होंने भी अच्छा सहयोग दिया।

संगीत समारोह का आयोजन टिकटों पर किया गया था। भातखण्डे जी ने स्वयं भी टिकट खरीदे और मित्रों को भी टिकट दिलवाये। वे अपने मित्रों सहित समारोह में शामिल हुए। उस दिन विष्णु दिगंबर जी ने बड़े ही प्रभावशाली ढंग से गाया। ग्वालियर घराने की गायकी की धाक जम गई। संगीत समारोह बहुत सफल रहा। श्री भातखंडे एवं बंबई के अनेकों संगीतकारों व श्रोताओं ने पंडित जी की प्रशंसा की।

बंबई के लोगों में शास्त्रीय संगीत के प्रति रुचि जागृत होने लगी। परिस्थितियां अनुकूल देखकर पंडित जी ने, बंबई में अपना कार्य-क्षेत्र शीघ्र आरंभ करने का संकल्प कर लिया। अतः दशहरा के पर्व पर, सितंबर, 1908 को हिंदू धर्म विधा

के जगद्गुरु श्री शंकराचार्य के हाथों, गांधर्व महाविद्यालय का उद्घाटन हुआ। गिरगांव-बैंक रोड (आज का नाम विट्ठल भाई पटेल रोड) पर यह इमारत किराये पर ली गई थी। महाविधालय की प्रसिद्धि बंबई में फैलने लगी। कुछ ही दिनों में विद्यार्थियों की संख्या इतनी हो गई महाविद्यालय को कांग्रेस-हाऊस के रास्ते पर एक बहुत बड़ी इमारत में बदलना पड़ा। वहाँ पर विभिन्न भाषा और राज्यों के विद्यार्थी रहने लगे।

पंडित जी की प्रेरणा से स्त्रियां भी महाविद्यालय में आने लगीं। उनके लिए दोपहर तीन से छः तक का समय अलग से निश्चित किया गया। प्रातःकालीन कक्षाओं में अन्य लोग संगीत सीखने लगे। पंडित जी महाविद्यालय के प्रिंसिपल थे। उन्हीं की देख-रेख में गांधर्व महाविधालय का कार्य सुचारू रूप से चलने लगा। इससे पंडित जी बहुत संतुष्ट थे।

सुबह सात बजे घंटी बजते ही छात्र एवं शिक्षक प्रार्थना में सम्मिलित होते। आरंभ में कुछ दिन पंडित जी ने स्वयं, इन प्रार्थना गीतों का निर्देशन किया। इसके बाद यह कार्य अन्य शिक्षकों को सौंप दिया।

प्रार्थना गीत 1. : गुरु ब्रहमा गुरु विष्णु, 2. रचा प्रभु तूने यह ब्रह्मांड सारा, 3. सरस्वती शारदा विद्या दयानी, 4. ओम जय जगदीश हरे (सायंकालीन) आदि समूहगान के रूप में गाए जाते थे। पंडित जी अपने महाविद्यालय को और भी आगे ले जाना चाहते थे। उन्होंने छापाखाना और वाद्य-यंत्रों का कारखाना बंबई में मंगवा लिया। वे यहाँ पर गांधर्व महाविद्यालय को प्रमुख एवं संचालन केन्द्र के रूप में स्थापित करना चाहते थे। इसलिए दिन-रात महाविद्यालय के विस्तार कार्यों में व्यस्त रहने लगे।

पाठ्यक्रम की अनेक पुस्तकें तैयार हो चुकी थीं। अब पंडित जी ने परीक्षा-पद्धति की योजना बनाई। अलग-अलग उपाधियों हेतु विभिन्न पाठ्यक्रम तैयार किए गए। आरंभिक चार वर्षों के पाठ्यक्रम का नाम, 'संगीत प्रवेशिका'

रखा गया। अंतिम पांच-वर्षों के पाठ्यक्रम का नाम 'संगीत-प्रवीण' रखा गया। अब संगीत की वार्षिक परीक्षाएं लाहौर तथा बंबई में सुचारू रूप से होने लगीं। बाद में 'संगीत-विशारद' उपाधि को 'संगीत-प्रवीण' से पहले निश्चित कर दिया।

कई घरानेदार कलाकारों ने इस बात का मजाक उड़ाया कि अब संगीत विद्या की भी पढ़ाई-लिखाई व परीक्षा होने लगी है। विष्णु जी का सीधा तर्क था कि जब अन्य विद्याओं की पढ़ाई-लिखाई व परीक्षा होती है तो संगीत की क्यों नहीं होनी चाहिए। इस प्रकार संगीत को भी शिक्षा में स्थान दिलाने की भूमिका तैयार होने लगी।

गांधर्व विद्यालय का प्रथम पदवी दान समारोह (कनवोकेशन) सन् 1911 में बंबई में हुआ। प्रमुख अतिथि वहाँ के गवर्नर लार्ड सिडनहास थे। सन् 1915 में दूसरे दीक्षांत समारोह की अध्यक्षता लार्ड विलिंगडन ने की। सन् 1919 में तीसरे दीक्षांत समारोह की अध्यक्षता बंबई के गवर्नर जॉर्ज लायड ने की। सच तो यह है कि उस काल में, गवर्नर का किसी समारोह में शामिल होना अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना जाता था। यह सब पंडित जी के व्यक्तित्व का ही प्रभाव था।

अब महाविद्यालय की प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गई थी कि बंबई के रईस लोग अपनी संस्थाओं के वार्षिक उत्सवों में उनके शिष्यों को आमंत्रित करने लगे। घरेलू कार्यक्रमों में भी उन्हें बुलाया जाने लगा था। महाविद्यालय में छोटे बच्चों को 'क्लब-ड्रिल', 'फ्लैग-ड्रिल,' 'हिन्दोस्तानी-बैंड,' 'व्यायाम के साथ संगीत,' 'गांधर्व समूह-गान' जिसमें राष्ट्रीय तथा भक्ति गीत आदि भी शामिल थे, सिखाये जाते थे। इसलिए वहाँ के समाज में इनकी प्रतिष्ठा बढ़ती गई। अनेक नाटक कंपनियों का भी महाविद्यालय से संपर्क हुआ। उन्होंने नाटक कंपनियों को भी सहयोग दिया तथा अनेक नाट्य सभाओं में भाग लिया। वे नाटक और संगीत के गहरे संबंधों की जानकारी रखते थे। परंतु वे नाटक में अश्लील गीतों को निषिद्ध मानते थे।

सन् 1910 में पूना के किर्लोसकर नाट्यगृह में होने वाली नाट्यसभा में,

भाग लेने के लिए विष्णु जी को निमंत्रण भेजा गया। वे किसी दौरे पर जाने वाले थे। वे इस नाट्य सभा के महत्व को समझते थे। दौरे पर जाना भी पूर्व-निश्चित था। इसलिए उन्होंने जाने से पूर्व एक निबंध लिखवा दिया और नारायण राव खरे को वहाँ उस निबंध को पढ़ने का आदेश दिया। नारायण राव खरे ने वह निबंध नाट्य सभा में पढ़कर सुनाया। इससे नाट्य क्षेत्र के लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ा। अनेक नाटक कंपनियों के बाल कलाकार,कंपनी की ओर से गांधर्व महाविद्यालय में संगीत शिक्षा लेने लगे।

अनेक नाटकों में उनके गाए हुए गीत काफी लोकप्रिय हुए। इनके शिष्य भी कई नाटकों में गाने लगे। कुछ नाटकों में बाल गंधर्व तथा नाना साहब के गीत काफी लोकप्रिय हुए। इन्हीं दिनों कोल्हापुर की संगीत नाटक मंडली की ओर से एक नाट्य समारोह आयोजित किया गया। वह समारोह बंवई में हुआ। उसमें विष्णु जी को अध्यक्षीय भाषण देना था। उन्होंने अपने भाषण में विभिन्न नाटकों के अश्लील गीतों व भद्दे वार्तालापों की कड़ी आलोचना की। इससे नाट्य क्षेत्र के लोग उनसे नाराज हो गए।

प्रसिद्ध गायक श्री भास्कर राव भी विष्णु जी से इस बात पर अप्रसन्न रहने लगे। उन्होंने भी कई नाटकों में गाया था। उन्हें लगा कि शायद उस आलोचना का लक्ष्य उन्हें ही बनाया गया है। वास्तव मे विष्णु जी के निबंध में आलोचना निष्पक्ष भाव से की गयी थी। विरोधियों ने श्री भास्कर राव के नाम पर पूना में संगीत विद्यालय खोलने की योजना बनाई। परन्तु भास्कर राव ने मना कर दिया और उनका सहयोग सदैव विष्णु जी को मिलता रहा क्योंकि विष्णु जी में कुछ विशेष गुण थे जैसे वाक् चातुर्य, संगठन चातुर्य, वचनबद्धता, समयबद्धता, विद्वानों और कलाकारों का सत्कार करना आदि। वे अपने बारे में की गई आलोचना को भी धीरज से सुनते थे और उसका विनम्रतापूर्वक तर्क पूर्ण ढंग से उत्तर देते थे। महाविद्यालय में आने वाले अतिथियों की यथायोग्य सेवा सत्कार करते थे।

विष्णु जी ने अनेक सम्मेलनों में अपनी संगीत लिपि पर भाषण दिए। कभी भी अपनी पद्धति को सर्वश्रेष्ठ नहीं बताया। उन्होंने सदैव अच्छे गुणों को अपनाने व अवगुणों को छोड़ने का उपदेश अपने शिष्यों को दिया।

सन् 1910 में उन्होंने गांधर्व महाविद्यालय के नाम से मराठी भाषा में एक अन्य मासिक पत्र भी आरंभ किया। इससे मराठी भाषा के लोगों की माँग पूरी हो गई। "व्यायाम के साथ संगीत" एवं "भजनामृत लहरी" पुस्तकों का प्रकाशन इसी समय हुआ था। उनका विचार था कि भारत में धर्म की जड़ें बहुत गहरी हैं, अतः यहाँ इस आधार पर किसी भी कला का प्रचार करना आसान है। यही सोचकर उन्होंने (सास ननद, "पलँग न चढूंगी पिया बिन") जैसी रचनाओं के स्थान पर संत कवियों तथा साहित्यकारों की रचनाओं का संगीत में प्रयोग किया। इसी कारण उनका यह प्रयोग अत्यंत सफल रहा। उन्होंने अपनी पुस्तकों में श्रृंगार रस की जगह, भक्ति रस की रचनाओं को प्राथमिकता दी।

विष्णु जी, रामायण की चौपाईयाँ बहुत ही सुंदर ढंग से गाते थे। कई मंदिरों में उन्होंने अपना कार्यक्रम रामायण से आरंभ किया। भक्ति के माध्यम से संगीत-प्रचार का प्रयोग, उस काल के अनुकूल था। इसमें उन्हें सफलता भी मिली।

विभिन्न नगरों की संस्थाओं से संगीत शिक्षकों की माँग आने लगी। ऐसी ही एक मांग हिंदू कालेज, बनारस से आई। विष्णु ने वहाँ पर श्री कृष्ण हिर्लेकर को भेज दिया। बी.ए. कशालकर को इलाहाबाद भेजा। इस प्रकार अब विभिन्न महानगरों में पंडित जी के शिष्य संगीत-प्रचार में जुट गए। सन् 1910 से 1912 के बीच पंडित जी ने महाराष्ट्र के दक्षिणी इलाकों का दौरा किया। अनेक संगीत कार्यक्रम दिए। जिनका प्रमुख उद्देश्य था, अपने कार्यों का विस्तार एवं महाविद्यालयों के लिए धन की व्यवस्था। इस काल में अनेक नए शिष्य भी महाविद्यालय में आए, जो बाद में काफी प्रसिद्ध हुए। इनमें से पंडित ओंकार नाथ ठाकुर का नाम

प्रसिद्ध है। इनकी प्रसिद्ध पुस्तकें "संगीतांजलि" (छः भाग) "प्रभाव भारती" एवं "राग अन्य रस" हैं। 1916 में इन्हें गांधर्व महाविद्यालय, लाहौर का प्रिंसिपल बनाया गया। 1950 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के संगीत विभाग के अध्यक्ष बने। भारत सरकार की ओर से इन्होंने शांति-परिषद् "बुडापेस्ट" (हंगरी, जर्मन) आदि देशों में भाग लिया। इस प्रकार पंडित जी के शिष्य राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धी के संगीतकार बने।

संगीत शिक्षा के प्रति लोगों का बढ़ता आकर्षण देखकर पं. विष्णु दिगंबर जी ने पूना तथा नागपुर में भी गांधर्व महाविद्यालय स्थापित किए। खर्च दिन-पर-दिन बढ़ रहा था। ऋण का बोझ और इमारतों का किराया बढ़ने लगा। उनके मन में विचार आया कि यदि हमारा अपना भवन हो तो ऊपर का सारा खर्च महाविद्यालयों के विकास में लगाया जा सकता है। इस योजना पर गंभीरतापूर्वक सोचने लगे।

6
संघर्ष एवं कृतित्व

पंडित विष्णु दिगंबर जी ने अपने मित्रों एवं प्रशंसकों से भवन बनाने की योजना पर विचार किया। सभी ने अपना भवन बनाने की सलाह दी। उन दिनों श्री बाबा साहब बिवलकर (मिराज राज परिवार के दामाद) बंबई में थे। वे संगीत में गहरी रुचि रखते थे। उनका महाविद्यालय में आना जाना था। वे पंडित जी के प्रशंसक एवं मित्र थे। बाबा साहब ने अपनी एस्टेट इस कार्य के लिये दान कर दी एवं कुछ रकम कर्ज के रूप में दी। पंडिज जी के पास उस वक्त जितना धन था, वह और कर्ज का सारा धन गांधर्व महाविद्यालय के भवन पर खर्च कर दिया। यह सारा कार्य बगैर किसी लिखा-पढ़ी के हुआ।

भवन बनना आरंभ हो गया। भवन का शिलान्यास 9 अक्तूबर, 1913 को सर भालचंद्र द्वारा किया गया। सर भालचंद्र एक प्रभावशाली व्यक्ति थे, जिनकी उस जमाने में अंग्रेज अधिकारियों तक पहुँच थी। वे भी विष्णु जी के प्रशंसकों में से थे।

15 महीने में महाविद्यालय का भवन तैयार हुआ। विष्णु जी अत्यंत प्रसन्न दिखाई देते थे। उनका पुराना सपना जो साकार हुआ था। इसलिए अब जोर-शोर से उद्घाटन समारोह की तैयारी होने लगी। आखिर वह दिन भी आया जिसका उन्हें इंतजार था। 11 जनवरी, 1915 को बंबई के गवर्नर, सर लार्ड विलिंगडन के द्वारा गांधर्व महाविद्यालय के अपने भवन का उद्घाटन हुआ। जिसका आरंभ

शहनाई वादन से हुआ। आभार स्वरूप पंडित जी ने गवर्नर साहब को एक चाँदी का बना हुआ "तानपुरा" (तंबरा वाद्य) भेंट किया। गवर्नर साहब ने पंडित जी की निस्वार्थ-संगीत-सेवा का वर्णन बहुत अच्छे शब्दों में किया। वहाँ के सभी समाचार-पत्रों ने उद्‌घाटन समारोह एवं पंडित जी के कार्यो की प्रशंसा में लेख प्रकाशित किए।

यह भवन तीन-मंजिला बनाया गया था। सतह की मंजिल मे संगीत वाद्यो का प्रदर्शनी हाल था। पहली व दूसरी मंजिल में संगीत कक्षाओं के लिए अलग-अलग कमरे थे। संगीत समारोह नीचे के हाल में आयोजित किए जाते थे। जिसमें पांच सौ व्यक्तियों के बैठने का स्थान था। रहने के लिए कुछ अलग कमरे थे। उस काल की यह ऐतिहासिक घटना थी, क्योंकि उन दिनों संगीत विद्यालयो के पास अपने भवन नहीं होते थे। संपूर्ण व्यवस्था से पंडित जी संतुष्ट थे, परंतु कभी-कभी अपने पर चढ़े हुए कर्ज के बोझ से उदास हो जाते थे।

भवन तैयार होने से, महाविद्यालय का कार्य और सुचारू रूप से चलने लगा। बहुत से राष्ट्रीय नेताओं ने संस्था का निरीक्षण किया जैसे— महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, डा. राजेन्द्र प्रसाद, मदन मोहन मालवीय, देशबंधु चितरंजन दास, तथा महाराजा मिराज एवं इचल करजीकर इत्यादि ने यहाँ के कार्यो पर प्रसन्नता व्यक्त की।

महात्मा गाँधी जी एक बार महाविद्यालय में आए तो उन्होंने कहा, "मैं, संगीत व संगीतकारों की समस्याओं को समझता हूँ। जब भारत में अपने लोगों की सरकार बनेगी तो संगीत के सब संकट दूर हो जाएँगे।" इसी प्रकार राजेन्द्र प्रसाद जी ने कहा— "संगीत, भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों तरह से ही साधना का विषय है। इससे शारीरिक एवं मानसिक विकास होता है। इसका प्रयोग, देश के नव-निर्माण, चरित्र-निर्माण एवं जन-कल्याण के लिए होना चाहिए।"

पंडित जी के बहुमुखी विकास से कुछ लोग ईर्ष्या भी रखते थे। उन लोगो

ने श्री बाबा साहब देवलकर को इनके खिलाफ भड़का दिया। जिससे बाबा साहब ने अपने वकील द्वारा कर्ज चुकाने का नोटिस दे दिया। कर्ज न लौटाने की सूरत में मुकदमे की बात भी कही गई थी। यह नोटिस देखकर पंडित जी पर तो जैसे आसमान गिर पड़ा। उन्हें सपने में भी इस स्थिति की आशा न थी। उन्हें बिल्कुल विश्वास नहीं हुआ कि बाबा साहब देवलकर उनके साथ ऐसा कर सकते है।

गांधर्व महाविद्यालय का बजट सदैव घाटे में होता था। इसलिए इतनी जल्दी कर्ज लौटाना संभव न था। यह सोचकर वे मिराज के महाराजा बाला साहब के पास गए ताकि वे अपने दामाद देवलकर को समझा सकें। पंडित जी ने कर्ज वसूली और नोटिस के संबंध में बातचीत की। महाराजा मिराज कहने लगे विष्णु तुम तो सदा भगवान पर भरोसा करने वाले व्यक्ति हो, फिर मेरे पास क्यों आए हो ? अब तुम्हारा भगवान कहाँ है ?" पंडित जी अपने स्वाभिमान के कारण शांत रहे। तब महाराजा मिराज ने कह दिया कि "यह तुम्हारा और देवलकर का आपसी मामला है, मैं इसमें कुछ नहीं कर सकता।"

सच तो यह है कि महाराज अपने राजसी-हठ के कारण सोचते थे कि इस मुसीबत में विष्णु दिगंबर गिड़गिड़ाएगा, मेरे पाँव पकड़ कर कहेगा कि, "मेरे तो भगवान आप ही हैं।" परंतु प. विष्णु दिगंबर जी सोचते थे कि उन्होंने जो भी किया, वह गांधर्व महाविद्यालय के लिए किया है। किसी निजी स्वार्थ के लिए नहीं। वे तो केवल कर्ज-वसूली की अवधि बढ़वाना चाहते थे। हालांकि देवलकर ने कर्ज देते समय, "जब मर्जी लौटा देना" कहा था। कोई लिखत भी नहीं थी। परंतु विरोधियों के उकसाने पर देवलकर ऐसा कर रहे थे।

पडित जी बिना कुछ उत्तर दिए वहाँ से बंबई वापिस आ गए। एक दिन पंडित जी गहन चिंतन में लीन थे। इसे देखकर भवन के इंजिनियर एन.बी. सुखटनकर ने पूछताछ की, तो पंडित जी ने सारी बात बता दी। तब सुखटनकर

ने उनको धीरज बंधाया और स्वयं अपनी ओर से सत्तर हजार रुपये पंडित जी को कर्ज के रूप में दिए। पंडित जी ने तुरंत देवलकर का कर्जा चुका दिया। अब वे सुखटनकर का कर्ज उतारने की चिंता करने लगे। इससे छुटकारा पाने के लिए उन्होंने पूरा भवन सेठ बिठ्ठलदास के पास गिरवी रख दिया और सुखटनकर का कर्ज भी चुका दिया। वे धन और खर्च के मामले मे कभी योजनाबद्ध न हो सके। इसलिये सदैव आर्थिक बोझ के नीचे दबे रहे।

सन् 1916 को इनके समकालीन संगीत सुधारक पं. विष्णु नारायण भातखंडे जी ने एक सर्व भारत संगीत सम्मेलन (कानफरेंस) का आयोजन किया। यह आयोजन बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ की अध्यक्षता में हुआ। इसमें अनेक राजाओं, नवाबों एवं उनके दरबारी संगीतकारों ने भाग लिया। इस सम्मेलन (कानफरेंस) में पं. विष्णु दिगंबर जी भी निमंत्रित थे। पंडित जी वहाँ अपने शिष्यों सहित गए और उस कानफरेंस में अपनी संगीत लिपि पर भाषण भी दिया।

सम्मेलन (कानफरेंस) में हिंदी, मराठी, गुजराती, एवं अंग्रेजी भाषा में लेख पढ़े गए। परंतु सम्मेलन का सारा आयोजन अंग्रेजी भाषा में ही चलाया जा रहा था। अधिकतर संगीतकार अंग्रेजी भाषा नहीं जानते थे। वे केवल अपने राजाओं के इशारे से ही हाथ खड़े करके प्रस्ताव पारित कर रहे थे। जबकि पंडित जी प्रत्येक विषय पर विचार-विमर्श करना चाहते थे। इसलिए उन्हें वहाँ का वातावरण रास न आया। वे वहाँ से जाना चाहते थे।

वहाँ पर एक लेखिका एवं संगीत समीक्षक अतिया बेगम भी आई हुई थीं। भाषण के अंत में अतिया बेगम ने पंडित विष्णु दिगंबर जी से प्रश्न किया, "आपकी संस्था ने अब तक कितने लोगों को 'तानसेन' बनाया है।" यह व्यंग्य उनके कार्यों पर था। वे बोले, "तानसेन खुद भी कोई दूसरा तानसेन पैदा नहीं कर सका, मैं तो उनके चरणों की धूल हूँ।" "तो फिर यह गांधर्व महाविद्यालय

किसलिए ?" वह बोलीं। "इसलिए कि संगीत की पहुँच राजमहलों से लेकर झुग्गी-झोंपड़ी तक हो सके। इसलिए कि तानसेन जैसे किसी भी गायक को लोग सुन सकें। इसलिए कि भविष्य में अनेक तानसेन पैदा हो सकें। क्या इतना ही काफी नहीं कि मैंने देश में ऐसे हजारों तानसेन पैदा किए हैं, जो शास्त्रीय संगीत को शौक से सुनते हैं, समझते हैं और सीखते भी है।" पंडित जी आवेश में बोले। सभी लोगों ने तालियाँ बजाकर पंडित जी की "हाज़िर-जवाबी" की प्रशंसा की तथा अतिया बेगम ने कहा, "यह तो मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं है।"

पंडित जी ने कहा अगर आप सीधा उत्तर चाहती हैं तो मेरे प्रश्न का उत्तर दें। "क्या आज के स्कूलों-कालेजों ने कोई एक भी कालिदास, वाल्मीकि, महात्मा बुद्ध, सूरदास, तुलसीदास या गुरुनानक पैदा किया है?" इस सीधे प्रश्न से अतिया बेगम चुप हो गई, और उपस्थित श्रोता पंडित जी की प्रशंसा करने लगे।

अभी पिछला कर्ज पूर्ण रूप से उतरा नहीं था। लोगों की माँग को देखते हुए पंडित जी ने छात्रावास (होस्टल) की इमारत का शिलान्यास सन् 1916 में श्री नारायण महाराज केंडगांवकर के हाथों करवाया। जब इमारत बन गई तो इसका उद्घाटन इचलकरंजी रियासत के राजा द्वारा हुआ। अब दोनों इमारतें एक ही विशाल भवन की तरह दिखाई देती थीं। परंतु इसके साथ ही कर्ज की रकम भी दो लाख रुपये के लगभग हो गई थी।

सन् 1917 के पश्चात पंडित जी तनावग्रस्त रहने लगे। एक तरफ कर्ज का बोझ था। दूसरी तरफ अपने कार्यों का विस्तार था। जिससे वे पीछे नहीं हटना चाहते थे। सन् 1920 के लगभग कुछ और पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं जैसे 'भजनामृत लहरी', 'कर्नाटकी संगीत', 'बंगाली गायन', 'स्वल्पालाप गायन', 'होरी गायन', 'टप्पा गायन', एवं 'राग-प्रवेश' (12 भाग) आदि। इसके शेष भाग बाद में छपे। वे जीवन के अंत समय तक पुस्तकें लिखते रहे और प्रकाशित करवाते रहे। बेशक इनसे कोई ज्यादा आमदनी नहीं होती थी क्योंकि उन दिनों एक तो

पुस्तकों की बिक्री कम थी दूसरे उनकी कीमत कम होती थी। महाविद्यालय के छात्रों को, ये पुस्तकें मुफ्त दी जाती थीं।

उन दिनों संगीत, आज की तरह स्कूलों-कालेजों में एक विषय के रूप में नहीं पढ़ाया जाता था। गरीब घरों के विद्यार्थी, निःशुल्क (बिना फीस) सीखने आते थे। अमीर घरों के बच्चों की संख्या बहुत कम होती थी। इसलिये रामायण-पाठ, एवं मंच-प्रदर्शन से जो भी धन मिलता, उसे पंडित जी गांधर्व महाविद्यालय पर खर्च कर देते थे।

सन् 1918 की बात है।

मिराज के राजमहल में चहल-पहल थी। राजमहल दीपमाला से जगमगा रहा था। महाराजा मिराज के दो राजकुमारों की शादी होने जा रही थी। इस सिलसिले में, विवाह के एक दिन पूर्व, सिद्धि विनायक भगवान गणेश जी को निमंत्रण देने के लिये जाना था। राजमहल से गणेश जी के मंदिर की ओर एक भव्य जुलूस जा रहा था, जिसमें अनेक रियासतों के राजा-महाराजा भी शामिल थे। जुलूस को देखने के लिये भारी-भीड़ उमड़ पड़ी थी। दीवारों, छतों एवं छज्जों पर जनता चढ़ी हुई थी। बैंड-बाजे, शहनाई, ढोल, नगाड़े आदि बज रहे थे। सभी अतिथि जुलूस में कतारबद्ध होकर चल रहे थे।

एक वृद्ध जो रियासत के कोई पुराने अधिकारी रह चुके थे, वे भी एक ममटी पर खड़े हुए थे और अपने आस-पास के लोगों को प्रसन्नतापूर्वक बता रहे थे कि, "वह देखो ! जमखंडी के राजा आ रहे हैं। उनके साथ में इचलकरंजी के राजा हैं। उनके पीछे सांगली के राजा हैं।"

एक युवक ने इशारा करके पूछा, "साथ में वे ऊंचे लंबे, गौर वर्ण, काले चश्मे वाले, बढ़िया जरीदार साफा बांधे हुए व्यक्ति कौन हैं ?"

"वह संगीत जगत के राजा हैं।" वृद्ध ने कहा।

"क्या मतलब ?" युवक ने आश्चर्य से पूछा।

"अरे! संगीत के लहराते हुए सागर हैं। इनका नाम नहीं पढ़ा कभी अखबारों में?" वृद्ध ने पूछा?

"क्या नाम है इनका?" युवक ने उत्सुकता से पूछा।

"बेटा! यही तो है पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर, जो बचपन में हमारे महाराजा के आश्रय में रहते थे। महाराजा ने इन्हें अपने दरबारी गायक पं. बाल कृष्ण बुवा से गाने की तालीम दिलवाई थी। आज तो यह बहुत बड़े गायक हैं। बड़ा नाम कमाया है इन्होंने।"

"अच्छा! यही हैं पं. विष्णु दिगंबर जी? हाँ! मैंने इनका चित्र कहीं देखा है। यह तो सभी से अधिक प्रभावशाली लगते हैं। अच्छा हुआ आपने बता दिया। आज इनके भी दर्शन हो गए।"

श्री भातखंडे जी की तरह, अब पंडित विष्णु दिगंबर जी भी एक संगीत-सम्मेलन करना चाहते थे। सन् 1918 में उन्होंने प्रथम संगीत-परिषद् का आयोजन किया। यह सम्मेलन बड़ौदा के सम्मेलन से भिन्न था। उसमें भारत के प्रसिद्ध संगीतकारों को बुलाया गया। उन्होंने अपने 'गुरु जी' श्री बाल कृष्ण बुवा तथा रहमत खाँ साहब, विलायत हुसैन खाँ, इस्माईल खाँ (सितार वादक) एवं पंडित गोबिंद बुवा इत्यादि को आमंत्रित किया। प्रसिद्ध बैरिस्टर बुवा संगीत प्रेमी श्री एम.आर. जयकर ने इस आयोजन की अध्यक्षता की। सभी संगीतकारों ने संगीत प्रस्तुत किया और सेमिनार में कुछ लोगों ने पेपर पढ़े।

इसी प्रकार की पाँच संगीत परिषदें बंबई में पंडित विष्णु दिगंबर जी ने आयोजित कीं, जिनकी अध्यक्षता किसी बड़े संगीतकार द्वारा की गई। संगीतकारों में खुलकर विभिन्न विषयों पर वाद-विवाद भी होता और संगीत प्रदर्शन भी।

सन् 1919 की संगीत परिषद् में पं. बाल कृष्ण बुवा ने अध्यक्षता की और पं. भास्कर बुवा ने 'वाद्य-प्रदर्शनी' का उद्घाटन किया। साहित्य एवं संगीत विषय पर पं. ओंकार नाथ ठाकुर तथा सरदार आना साहब ने भाषण दिया। पं. विष्णु

दिगंबर जी ने 'प्राचीन संगीत ग्रंथों का प्रचलित संगीत में उपयोग' विषय पर निबंध पढ़ा। इसी प्रकार अनेक विषयों पर चर्चा हुई। इन निबंधों को बाद में मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित किया गया।

गांधर्व महाविद्यालय के सामने श्री राम चौक था। इन दिनों सभी संगीत सभाएँ अथवा समारोह 'श्री राम चौक' में होते थे। इन दिनों वहाँ एक कीर्तन सम्मेलन भी हुआ जिसमें कीर्तन और संगीत विषय पर अनेक विद्वानों ने भाषण दिए और शास्त्रीय संगीत में कीर्तन की विभिन्न शैलियों का गायन प्रस्तुत किया। उपर्युक्त संबंध में पूछने पर पंडित जी बताते थे कि मैं धर्म के साथ-साथ उच्च स्तरीय संगीत भी लोगों को सुनाना चाहता हूँ ताकि वे सुनें, गाएँ और रस लें।

मूर्ति स्थापना

इन्हीं दिनों की एक घटना है। प्रसिद्ध शिल्पकार डा. र.क. फड़के, पंडित जी के संपर्क में आए। वे मूर्ति कला एवं संगीत कला में गहरी रुचि रखते थे। पंडित जी के श्रद्धालु थे। उन्होंने श्री बाल कृष्ण बुवा, विष्णु दिगंबर तथा बाल गांधर्व की आवक्ष मूर्तियां बनाई थीं। उन्होंने ही पाँच फीट ऊँची श्री गणेश जी की मूर्ति बना कर पंडित जी को भेंट स्वरूप दी।

इस मूर्ति को गांधर्व महाविद्यालय की तीसरी मंजिल में पहुँचाना था। मूर्ति अधिक भारी थी। अन्य किसी भी ढंग से ऊपर ले जाने में टूटने का भय था। पंडित जी ने 20-25 विद्यार्थियों को सीढ़ियों के रास्ते से, मूर्ति को ऊपर ले जाने का आदेश दिया। उठाते समय 'राजा रामचंद्र की जय' की जय-जयकार आरंभ कर दीए। उन्हें मालूम था, लयबद्ध जयकार बोलने से जोश बढ़ता है और थकावट कम होती है। इस प्रकार प्रत्येक जयकार के साथ, विद्यार्थी उत्साहपूर्वक मूर्ति को तीन-चार सीढ़ियां ऊपर ले जाते। थोड़े ही समय में वे मूर्ति को ऊपर ले जाने में सफल हो गए। मूर्ति को ऊपर के हाल कमरे मे काँच की अलमारी

में स्थापित किया गया। अब प्रत्येक शुभ अवसर पर संगीत के माध्यम से 'गणेश-पूजा' होने लगी।

संकट की घड़ी

गांधर्व महाविद्यालय का आर्थिक संकट बढ़ता गया। इस संकट को देखते हुए, लोकमान्य तिलक ने सुझाव दिया कि एक ट्रस्ट बनाकर, उसे रजिस्टर्ड कराकर गांधर्व महाविद्यालय को सार्वजनिक-संस्था के रूप में चलाया जाए। इससे सरकारी सहायता मिल सकेगी। परंतु पंडित जी ने किसी प्रकार की सरकारी सहायता लेने से इंकार कर दिया।

पंडित जी के शिष्य श्री नारायण मोरेश्वर खरे उन दिनों गाँधीजी के साबरमती आश्रम में संगीत-शिक्षक थे। उन्होंने गाँधीजी को सारी बात बताई। गांधीजी ने उन्हें पंडित जी के पास भेजा। नारायण मोरेश्वर खरे ने पंडित जी को बताया कि गाँधीजी चाहते हैं कि आप इस महाविद्यालय को "रजिस्टर्ड"(पंजीकृत) करवा दें और स्वयं प्रधानाचार्य पद पर कार्य करें। इससे आपका आर्थिक संकट टल सकता है। अब और कोई चारा नहीं है। गाँधीजी का दूसरा सुझाव है कि यह भवन, कांग्रेस-कार्यालय के लिए खरीद लिया जायेगा। जब तक आपकी और कोई व्यवस्था नहीं होती, तब तक आप, महाविद्यालय का कार्य यहीं पर चलाते रहें। परंतु पंडित जी ने भवन बेचना स्वीकार नहीं किया। यह सब भगवान की इच्छा पर छोड़ दिया।

इन दिनों पंडित विष्णु दिगंबर जी किसी से भी अपने मन की बात नहीं कहते थे। वे उस विशाल भवन को अपने पास रखने के पक्ष में थे। एक दिन बंबई के एक रईस, सर यूसफ मुहम्मद आए और भवन को देखकर, वे पाँच लाख रुपये देने को तैयार हो गए। परंतु एकाएक पंडित जी ने इंकार कर दिया। पंडित जी को एक प्रसिद्ध ज्योतिषी ने कहा था कि "यह भवन उनसे कोई नहीं छीन

सकता, इसे बेचना नहीं, भगवान शीघ्र उनकी मदद करेंगे'' लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ।

जब तक सेठ बिठ्ठल दास जिन्दा रहे तब तक तो ठीक-ठाक चलता रहा। उनकी मृत्यु के पश्चात पंडित जी को नोटिस पर नोटिस आने लगे। अंत में फरवरी 1924 ई. को भवन की नीलामी दो लाख, सोलह हजार में हो गई। जो नहीं होना चाहिए था वह हो गया। पंडित जी उस दिन हैदराबाद में थे। उस वक्त वहाँ कुछ मित्र धीरज बँधाने गए तो पंडित जी ने धैर्यपूर्वक उत्तर दिया, ''मेरे जीवन का लक्ष्य भवन निर्माण नहीं है। मैंने तो संगीत एवं संगीतकारों के पुनरुत्थान का बीड़ा उठाया है। काफी हद तक मैं उसमें सफल भी हुआ हूँ। मेरे सैंकडों शिष्य अनेक नगरों में ऐसे भवनों का निर्माण करेंगे जहाँ पर गांधर्व महाविद्यालय की पद्धति से संगीत शिक्षा होगी। भवन की नीलामी का मुझे कोई दुख नहीं है।''

पं. विष्णु दिगंबर जी की वह भविष्यवाणी आज सत्य सिद्ध हुई है। इस वक्त नई दिल्ली, नागपुर, कोल्हापुर, बंबई, इलाहाबाद, पूना, अहमदाबाद एवं अन्य कई नगरों में उनके शिष्य अपने भवनों में सुचारू रूप से संगीत शिक्षा दे रहे हैं। इनमें से नई दिल्ली के श्री विनय चंद्र मौदगिल्य, मिन्टो ब्रिज के नजदीक, विष्णु दिगंबर मार्ग पर अपनी पाँच मंजिली इमारत में गांधर्व महाविद्यालय चला रहे हैं। यह पंडित जी के शिष्य (पटवर्धन साहब) के शिष्य हैं। इसी प्रकार बंबई में देवधर्स स्कूल ऑफ इंडियन म्यूजिक संस्था प्रो. बी.आर. देवधर चला रहे हैं।

भवन नीलाम होने के पश्चात पं. विष्णु दिगंबर जी ने अपना निवास स्थान नासिक नगर में स्थापित कर लिया। फिर से वहाँ अपना भवन बनाया। छात्रालय भी वहीं पर ले गए। अब तक पुराने सभी शिष्य महाविद्यालय छोड़ कर जा चुके थे। कई शिष्यों ने स्कूलों-कालेजों में नौकरी कर ली। कई प्रसिद्ध मंच गायक बन गए। इन दिनों पंडित जी भीतर ही भीतर टूट गए थे। वे कुछ निराश तथा विरक्त रहने लगे। फिर भी उन्होंने साहस नहीं छोड़ा और नासिक में 'राम नाम

आधार आश्रम' की स्थापना की। वे भक्ति के माध्यम से निरंतर, संगीत की शिक्षा देने लगे।

बंबई वाले भवन की नीलामी के बाद भी कुछ कर्ज बाकी था। इसलिए नासिक वाले भवन की नीलामी का भी डर था। मित्रों और शिष्यों ने मिल कर 'राम नाम आधार आश्रम' को पंजीकृत करवा दिया। उससे अगले दिन साहूकार, नीलामी का नोटिस लेकर आया तो संस्था को रजिस्टर्ड देखकर, अपना मुँह लेकर लौट गया। इस प्रकार नासिक में पंडित जी फिर से कार्य में मग्न हो गए। धीरे-धीरे वे अपना कर्जा चुकाते रहे। जीवन में अंतिम समय तक उन्होंने लगभग सारा कर्ज उतार दिया था।

एक बार किसी भीड़ में पंडित जी की जेब कट गई, जिसमें पाँच सौ रुपये, बंबई की टिकटें, और तिजोरी की चाबियाँ थीं। स्टेशन पर जाते समय पता चला कि किसी ने जेब काट ली है। वे स्टेशन की ओर पैदल जा रहे थे। एक सेठ ने गाड़ी रोक कर पंडित जी से पूछा आप पैदल क्यों जा रहे हैं। पूरी बात पता चलने पर उसने पूछा, "मैं आपकी क्या सहायता करूं ?" पंडित जी ने कहा "अपने निवास स्थान पर "रामायण-संगीत" की व्यवस्था कर दें तो कृपा होगी।" सेठ जी ने उनकी इच्छानुसार सारी व्यवस्था कर दी। रामायण और संगीत का आयोजन पाँच दिन तक चलता रहा। वहाँ से पंडित जी को 500 रुपये से कहीं अधिक आमदनी हुई। तब आप शिष्यों सहित बंबई वापिस लौट आए। तब से रामायण-संगीत की ओर उनका झुकाव और भी ज्यादा हो गया। वे अक्सर कहा करते थे, "तुरंत-फलम गंधर्वम्" अर्थात, संगीत तुरंत फल देने वाली कला है।

नासिक में पंडित जी ने अपने निवास स्थान को तीन भागों में विभाजित किया हुआ था। एक भाग में रहने का स्थान, दूसरे भाग में संगीत विद्यालय और तीसरे भाग में 'राम नाम आधार आश्रम' जिसमें रामायण पाठ एवं भक्ति संगीत के कार्यक्रम होते थे।

7
व्यक्तित्व और जीवन संध्या

पंडित विष्णु दिगंबर जी की आवाज़ बहुत मधुर तथा गूँज भरी थी। लय-ताल पर उनका पूर्ण अधिकार था। उनके आलाप की गंभीरता सुनने लायक थी। विविध प्रकार के तानों की प्रस्तुति बड़ी चमत्कार पूर्ण होती थी।

पंडित जी के प्रमुख शिष्यों में से प्रसिद्ध श्री ओंकार नाथ ठाकुर ने उनके संगीत प्रभाव के संबंध में लिखा है– "मैने गुरु जी की महान संगीत साधना का अनुभव किया है। देखा, सुना और पहचाना है। पाँच-पाँच सप्तकों तक उनकी आवाज थी। निचले स्वरों की तानों से धरती काँपती हुई प्रतीत होती थी। नीचे की दरी खिंचती हुई सी जान पड़ती थी। दरबारी व मल्हार रागों की तानों से, सिंह की दहाड़, बिजली की कड़क और मेघ-गर्जना का अनुभव होता था। उनकी आवाज के आंदोलनों से गैस की बत्तियाँ काँपती थीं। पंद्रह कैंडल-पावर के बल्ब बुझने लगते थे। उनकी तपस्या की कितनी ही सिद्धियों को मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है।"

लगभग 56 वर्ष की आयु तक जहाँ भी पंडित जी ने गाया, वहाँ से पूर्ण यश, सम्मान एवं धन प्राप्त किया। वे ग्वालियर घराने की विशेषताओं को बड़े ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत करते थे। उन्होंने शास्त्रीय संगीत को नई दिशा प्रदान की। शास्त्रीय संगीत की अश्लील रचनाओं को छोड़ दिया और भक्ति तथा साहित्यिक रचनाओं को प्रचलित किया। स्त्रियों की संगीत शिक्षा को आरंभ किया। समाज

में संगीत एवं संगीतकारों को आदरणीय स्थान दिलाया। पश्चिमी संगीतकारों की तरह कुर्सियों पर बैठकर भी संगीत प्रदर्शन किया ताकि भारतीय संगीतकारों में कोई हीन भावना न पनपे। वे राजा-महाराजा अथवा विशेष अतिथियों के बैठने की व्यवस्था के अनुकूल ही, अपने बैठने की व्यवस्था करवाते थे। किसी भी हालत में दर्शक, श्रोता अथवा विशेष मेहमान के सामने, फर्श पर अथवा नीचे बैठकर कार्यक्रम नहीं देते थे।

वे संगीत कार्यक्रम के बीच किसी भी व्यक्ति को पान चबाने, शराब अथवा तंबाकू पीने की इजाज़त नहीं देते थे। वे स्वयं भी किसी प्रकार का व्यसन नहीं करते थे। सन् 1923 की घटना है–

एक रियासत के राजा ने निजी रूप से पंडित जी का गाना सुनना चाहा। परंतु उनके संदेशवाहक ने जिस ढंग से राजा का आदेश सुनाया, वह ठीक नहीं था।

पंडित जी ने संदेश भिजवाया कि, "मेरे यहाँ गांधर्व महाविद्यालय में आकर मेरा गाना सुन लें।" राजा ने फिर संदेश भिजवाया कि "मेरे यहाँ आकर ही गाना होगा। मैं मुँह मांगी फीस दूँगा। मैं एक रियासत का राजा हूँ। मुझे किसी के द्वार पर जाना शोभा नहीं देता।" पंडित जी ने जवाब भेजा– "गांधर्व महाविद्यालय सबके लिए है। यह मेरा निजी निवास स्थान नहीं है। मैं आपका दरबारी गायक भी नहीं हूँ। कृपया महाविद्यालय में पधारें और मेरा गाना सुन लें। मैं इसकी कोई फीस नहीं लूँगा।"

यह सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ। कैसा है यह गायक ? हमारे तो एक इशारे (संकेत) पर अनेक कलाकार दौड़े चले आते हैं। इसे अवश्य सुनना चाहिए। वे अपने प्रमुख दरबारियों एवं प्रबंधकों सहित महाविद्यालय में आए। पंडित जी ने सब पूर्व तैयारी कर रखी थी।

हाल में बैठने की सुंदर व्यवस्था की गई थी। गुलाब जल छिड़का गया।

राजा को फूल मालाएँ पहनाई गई। बड़े सलीके से सभी को जलपान करवाया गया। तब मंच से घोषणा की गई कि अब पंडित जी अपना गायन प्रस्तुत करेंगे। इससे पूर्व महाविद्यालय के छात्र सरस्वती-वंदना प्रस्तुत करेंगे।

सरस्वती-वंदना के समाप्त होते ही, राजा की दासियों ने अर्धनग्न वस्त्रों में, राजा एवं उसके दरबारियों को पान पेश किया। यह सब देखकर पंडित जी ने घोषणा की– ''यह गांधर्व महाविद्यालय, सरस्वती माँ का मंदिर है कोई राजमहल नही। मैं राजा जी से प्रार्थना करता हूँ कि अगर वे मेरा गाना सुनना चाहते हैं तो कृपया अपनी दासियों को यहाँ से हटा लें।'' राजा ने तुरंत अपनी दासियों को वहाँ से जाने के लिए कहा। दासियां चली गईं।

पंडित जी ने गाना आरंभ किया।

चार तानपुरों की झनकार में आलाप किया। आलाप में ओम् शब्द का दीर्घ उच्चारण बड़े ही प्रभावशाली ढग से किया। दोपहर का समय था। उसी समय का राग था – वृंदावनी-सारंग। प्रत्येक आलाप ''ओम्'' से आरंभ करते। षड्ज स्वर पर लौटते समय फिर ''ओम्'' कहकर बंद मुख से अपनी आवाज को लंबा करते। एक-एक स्वर का विस्तार करते समय जब तार सप्तक का षड्ज लगाया तो ''ओम्'' की प्रतिध्वनि से पूरा हाल गूँजने लगा। प्रतिध्वनि चारों ओर फैलने लगी। ऐसा लगता था जैसे भवन की दीवारें भी ''ओम्'' शब्द उत्पन्न कर रही हों। सभी श्रोता मंत्र-मुग्ध होकर सुन रहे थे।

पंडित जी आँखें मूंद, आत्म-विभोर होकर गा रहे थे। बंदिश के बोल थे–

''दर्शन देना प्राणपियारे, नंद लाला मेरे नेनों के तारे।''

आलाप के बाद अब तानों की बारी थी। उन्होंने यकायक गाना बंद कर दिया और चारों ओर देखने लगे। क्योंकि उन्हें तंबाकू की गंध आ रही थी। उनकी भवें तन गईं। वे तीव्र स्वर में बोले ''यह तंबाकू की गंध कहाँ से आ रही है ?''

कोई उत्तर नहीं मिला। हाल में सन्नाटा था।

"कौन पी रहा है तंबाकू?" पंडित जी ने पूछा।

एक अधिकारी ने उठकर पंडित जी के कान में धीमी आवाज से कहा– "राजा साहब को सिगार पीने की आदत है। उन्हें मना करना संभव नहीं।"

"क्यों संभव नहीं? यह कोई राज दरबार नहीं। गांधर्व महाविद्यालय है। यहाँ पर नशा करना वर्जित है।" पंडित जी ने ऊँचे स्वर में कहा।

राजा साहब अभी तक सिगार पी रहे थे। यह देखकर पडित जी ने आदेशपूर्ण स्वर में कहा "राजा साहब ! या तो आप सिगार पीना बंद कर दें नहीं तो मैं गाना बंद कर दूँगा।" सभी लोग राजा की तरफ देखने लगे।

यह देखकर राजा ने सिगार पीना बंद कर दिया। पूरा हाल तालियों से गूँज उठा। राजा को अपनी गलती का बोध हो गया था। पंडित जी ने फिर गाना आरंभ किया।

उस दिन पडित जी ने इतनी जोरदार तानें लीं कि सारे लोग दंग रह गए। राग के स्वरों को द्रुतगति में विस्तार करने को तान कहते हैं। तानों के अनेक प्रकार जो उस दिन पंडित जी ने दिखाए, वह कम ही सुनने को मिले। उस दिन की गमक की तानों (जोर लगाकर उच्चारण करने) से ऐसा लगता था जैसे बिजली कड़क रही हो, बादल गरज रहे हों, सागर लहरा रहा हो।

गाना समाप्त हुआ। तालियों की गड़गड़ाहट में पंडित जी ने नम्रतापूर्वक कहा– "संगीत कोई विलासिता (ऐश-परस्ती) का साधन नहीं। यह तो भक्ति और साधना का विषय है। राजा साहब ने मेरी दोनों प्रार्थनाओं को स्वीकार किया। इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र है। महाविद्यालय के नियमानुसार ऐसा करना आवश्यक था। मैं इसके लिए राजा साहब की प्रशंसा करता हूँ। उन्होंने मेरी बात भी रख ली और गाना भी सुन लिया।"

इसके पश्चात राजा साहब ने मंच पर आकर कहा–

"पंडित विष्णु दिगंबर जी के बारे में मैंने जैसा सुना था वैसा ही पाया है, इनकी जितनी भी प्रशंसा की जाए उतनी ही कम है। मैं इनके गायन का आदर करते हुए पांच सौ एक रुपये, एक शाल और मैडल (पदक) भेंट करता हूँ।"

एक बार फिर हाल तालियों से गूँज उठा। सभा समाप्त हुई।

जैसे-जैसे पंडित जी की आयु बढ़ती गई उनका झुकाव संन्यास की ओर होता गया।

"रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीता राम" इस भजन की धुन रचना भी पंडित जी ने बनाई थी। यह भजन उन दिनों बहुत लोकप्रिय हुआ। महात्मा गांधी जी की प्रार्थना सभाओं में भी यही भजन विशेष रूप से गाया जाता था।

इस काल के पंडित जी संगीतकार कम और संन्यासी अधिक दिखाई देते थे। हाथ में इकतारा, गोद में बैसाखी, तन पर कफनी (लंबा चोला) सिर पर जूड़ा, खुली दाढ़ी में वे किसी ऋषि के समान दिखाई देते थे।

पडित जी की मातृभाषा मराठी थी। परंतु उन्होंने विशेष प्रयत्न से हिन्दी भाषा सीखी। उनकी पचास से ऊपर पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित हुई। यद्यपि उन दिनों हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा प्राप्त नहीं था। वे राष्ट्रभाषा के महत्व को अच्छी तरह समझते थे और कहते थे कि एक दिन हिन्दी भाषा ही राष्ट्र-भाषा बनेगी। क्योंकि यही वह भाषा है जो सभी भारतीयों को एक सूत्र में बाँध सकती है। इसीलिए कई लोगों ने पंडित जी की आलोचना भी की, परंतु वे अपने विचारों पर दृढ़ रहे।

सन् 1923 की एक घटना है। पं. विष्णु दिगंबर जी को कांग्रेस अधिवेशन में राष्ट्रीय गीत गाने के लिए बुलाया गया। उस अधिवेशन के अध्यक्ष मौलाना मुहम्मद अली थे। पंडित जी वाद्यों को स्वरबद्ध करके वंदे मातरम् आरंभ करने लगे तो अध्यक्ष महोदय ने, धर्म निरपेक्षता की आड़ लेकर गाना बंद करने के

लिए कहा। पंडित जी तुरत बोले– "मैं भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में गा रहा हूँ। किसी अन्य मंच से नही। राष्ट्रीय कांग्रेस किसी विशेष संप्रदाय की जमात नहीं है। इसलिए मुझे "वंदे मातरम्" गाने से रोकने का अधिकार किसी को नहीं है ।"

पंडित जी की दृढ़ता देखकर सभी ने तालियाँ बजाई। उन्होंने विना अध्यक्ष की अनुमति की प्रतीक्षा किए वंदे मातरम् का गायन किया।

एक बार पंडित जी ने अपने कुछ पुराने शिष्यों को बुलाया। वे आए तो, उन्होंने पूछा कि संगीत प्रचार का कार्य कैसा चल रहा है ? कुछ शिष्यों ने उत्तर दिया, "गुरु जी क्या बतायें। जैसे-तैसे कुछ ट्यूशन वगैरह करके गुजर-बसर हो रही है।"

पडित जी रोषपूर्ण स्वर में बोले– "क्या मैंने तुम्हें संगीत की शिक्षा केवल अपना पेट पालने के लिए दी है ?"

सभी चुप थे। उत्तर देने की हिम्मत न थी। पंडित जी बोले "यदि मेरे गांधर्व महाविद्यालय को लौटा नहीं सकते तो कम से कम अपने लिए तो ऐसे महाविद्यालय बना सकते हो, जहाँ पर संगीत की शिक्षा हो।"

एक शिष्य ने डरते-डरते कहा, "गुरु जी, हमारे पास इतने साधन नहीं हैं कि........।"

"अरे ! जब मैंने अपना घर-बार छोड़ा था तो मेरे पास क्या था ?" वे तीव्र स्वर में बोले।

"केवल पच्चीस रुपये ही थे न वे भी उधार के। परंतु मैंने प्रभु कृपा से सैंकड़ो शिष्य पैदा किए। लाखों रुपये के भवन बनाए। क्या तुम सब मिलकर मेरे इस यज्ञ को सम्पूर्ण नही कर सकते? क्या तुम लोग सोचते हो कि, ना नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी।"आवेशपूर्ण आवाज में बोले–"अरे तुम राधा नचाओ, तेल स्वयं आयेगा। लोग प्रथम काम देखते हैं, फिर सहायता करते हैं। पहले कुछ

काम करके दिखाओ, फिर सहायता माँगो। तुम लोग इस महान कार्य को अपनी ही पूंजी से आरंभ करो। धीरे-धीरे सब ठीक हो जायेगा। जीवन एक रणभूमि है। संगीत का मार्ग संघर्ष का मार्ग है। पूरे आत्मविश्वास के साथ इस यज्ञ को आरंभ करो मेरा आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ है।"

गुरु जी से मार्गदर्शन पाकर सभी शिष्यों ने अपनी भूल स्वीकार की। भारतीय संगीत को देश-विदेश तक पहुँचाने की प्रतिज्ञा की। गुरु वचनों का पालन करते हुए अनेक शिष्यों ने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। एक सौ से अधिक शिष्यों ने विभिन्न नगरों के स्कूलों-कालेजों में जीवन के अंतिम क्षणों तक संगीत सेवा की। अनेक महाविद्यालय स्थापित हुए। यह सब पंडित जी की प्रेरणा का फल था।

कराची, कोल्हापुर, जम्मू-काश्मीर के बाद, जालंधर, अमृतसर फिर फिरोजपुर एवं फरीदकोट में संगीत संस्थाओं की स्थापना हुई। इन्हीं दिनों अंध महाविद्यालय, अमृतसर से संगीत शिक्षक की माँग आई तो पंडित जी ने वहाँ पर अपने शिष्य रघुनाथ राव कुलकर्णी को भेज दिया। वे जीवन भर वहाँ पर, अंध महाविद्यालय में संगीत सेवा करते रहे। इन्हीं के शिष्य श्री भीमसेन शर्मा ने फरीदकोट में 25 वर्ष लगातार संगीत शिक्षा दी। पं. श्रुति रत्न शर्मा एवं श्री देशबंधु सेठी ने फिरोजपुर में सारी आयु सगीत शिक्षा दी।

इन विद्यालयों ने संगीत क्षेत्र में बड़ा योगदान दिया। पंडित जी के अनेक शिष्यों ने मंच-प्रदर्शन के क्षेत्र में धूम मचा रखी थी। आज भी उनका नाम देश-विदेश में प्रसिद्ध है।

1929 की बात है। जब पंडित जी कुंभ के मेले पर इलाहाबाद गये तब वहाँ के संगम पर उन्होने ठंडी जलधारा के बीच खड़े होकर तीन घंटे जप किया। वहाँ का दृश्य ही इतना मनोहर था कि वे अंतर्प्रेरणा से राम-नाम का जाप करने लगे। वहाँ पर तीन नदियों का संगम है। उस स्थान पर लहरें अठखेलियाँ करती

है। कलाकार लोग उस दृश्य को देखकर भावुक हो जाते हैं। पंडित जी भी उस दृश्य को देखकर भाव-विभोर हो उठे। पानी के बीच मे खड़े होकर गाने लगे। उनकी आवाज पानी के ऊपर तैरती हुई सी जान पड़ती थी। अब एक तरफ थी लहरें, दूसरी तरफ संगीत का लहराता सागर, कौन कहे कि अब बस करो। ऐसे आनंदमय वातावरण मे पंडित जी ने कई घंटे गाया। सर्दी का मौसम था। वे बीमार हो गए। इसके बावजूद वे हिमालय की वादी में पहाड़ों की यात्रा करने लगे।

उस यात्राकाल में उन पर पक्षाघात (पैरालायसिज़) हुआ। शरीर के बायें अंग मृतप्राय हो गए। परंतु वे हठवश वापस नहीं लौटे। न ही विशेष दवा-दारू की। वहाँ से ज्वालामुखी के दर्शनार्थ चले गए। धर्मशाला से होते हुए बेजनाथ के झरनों पर कुछ दिन स्नान करने के पश्चात वापिस लौटे।

अनेक चिकित्सकों ने अपनी सेवाएँ पेश कीं। परंतु वे अपने हठ पर कायम रहे। मिराज के महाराजा बाला साहिब ने दो बार, तार भेज कर बुलाना चाहा। पंडित जी का एक ही उत्तर था कि अब मेरा "राम-नाम" के अलावा कोई इलाज नही है। वे अपनी आस्था के विरुद्ध कोई तर्क सुनने को तैयार नहीं थे।

पं. विष्णु दिगंबर जी संगीत के लिए तो समर्पित थे ही, परंतु वे इस कार्य में अन्य संगीतकारों का सहयोग भी चाहते थे। उनकी खूबी यह थी कि वह गुणों के पारखी थे। गुणीजनों का आदर करना चाहते थे। वे आपसी राग-द्वेष से मुक्त थे। जिस समय पंडित जी गांधर्व महाविद्यालय की स्थापना में लगे हुए थे उसी समय श्री भातखंडे भी इसी दिशा में कार्य कर रहे थे। श्री भातखंडे जी भी पंडित विष्णु दिगंबर जी की तरह ही एक प्रतिष्ठित संगीतकार थे। लेकिन मंच प्रदर्शन में उनकी रुचि नहीं थी। उन्होंने संगीत पर शोध-कार्य किया। पुस्तकें लिखीं। संगीत लिपि भी बनाई। उनके द्वारा स्थापित मौरिस म्यूजिक कालेज, लखनऊ, आज कल "भातखंडे यूनिवर्सिटी ऑफ म्यूजिक" के नाम से प्रसिद्ध है।

सन् 1929 की एक महत्वपूर्ण घटना है। पं. विष्णु दिगंबर जी के एक

विद्वान शिष्य श्री बी.आर. देवधर, बंबई जा रहे थे। बस में साथ वाली सीट पर श्री भातखंडे जी विराजमान थे। एक दूसरे को जानते थे। साधारण शिष्टाचार के पश्चात बातचीत होने लगी। यह बातचीत संगीत जगत के लिए महत्वपूर्ण है। उसका संक्षेप सार इस प्रकार है :

"सुना है कि आपके गुरु जी गंगा के शीतल जल में घंटों जप करते रहे। यह भी सुना है कि आजकल वे भक्ति-रस में ही डूबे रहते हैं। क्या यह ठीक है?"

"हाँ ! यह तो आपने ठीक ही सुना है।" देवधर ने कहा।

"इतनी कठिन साधना से संगीत-जगत को क्या लाभ होगा?" भातखंडे जी ने गंभीर स्वर में पूछा।

"हमारे गुरु जी इसे मानसिक-शक्ति के लिए जरूरी समझते हैं।" देवधर ने उत्तर दिया।

"अरे भाई! मानसिक शक्ति कितनी भी क्यों न हो, शारीरिक शक्ति की भी एक सीमा होती है।" भातखंडे जी ने समझाया।

"हमारे गुरु जी का कहना है कि मानसिक शक्ति के विकास से ही शारीरिक शक्ति स्थिर रहती है।" देवधर कुछ तीव्र स्वर में बोले।

"अरे देवधर ! इसे बहस का विषय मत बनाओ। मैं जो बात कह रहा हूँ, उसे समझने का प्रयत्न करो। पंडित जी के स्वास्थ्य के बारे में सोचो। इस आयु में ऐसी कठिन साधना से, वे ज्यादा बीमार हो सकते हैं। उनका कार्य महान है। देश को उनकी जरूरत है। आप शिष्य लोग उनसे बात करें।" भातखंडे जी एक साथ कह गए।

"क्षमा करना ! हमारे गुरु जी अपनी धुन के पक्के हैं। उन्हें समझाना हमारे बस की बात नहीं है। आप ही क्यों नहीं समझाते उन्हें?" देवधर ने नम्रता से कहा। "अरे देवधर ! तुम तो जानते ही हो कि मेरी उनसे एक बार किसी

अन्य विषय पर बातचीत हुई थी। मैंने उनसे कहा था कि मेरे पास शास्त्र है आपके पास गायकी है। क्यों न हम मिलकर संगीत प्रचार करें। परंतु ऐसा नहीं हो सका। इसलिए अब यह मेरे वश की बात नहीं है। तुम लोग पत्र लिखकर ऐसा नहीं कर सकते ?" वे बोले।

"नहीं ! ऐसा संभव नहीं है।" देवधर ने कहा।

"अच्छा देवधर। अब जो बात मैं तुमसे कहने जा रहा हूँ, उसे तुम पंडित जी से करवा सकते हो ?"

"ऐसी कौन सी बात है ?" देवधर ने कहा।

"देखो ! अहमदावाद में एक संगीत-परिषद् होने वाली है। उसे एक अंग्रेज अधिकारी आयोजित कर रहे हैं। उस अधिकारी का नाम है– कलेक्टर क्लेमेंट साहब" भातखंडे जी ने कहा।

"तो इसमें क्या बुराई है ?" देवधर बीच में ही बोल पड़े।

"अरे ! पूरी वात तो सुन लो पहले।" भातखंडे जी ने कहा।

"क्षमा करना ! मैं कुछ उत्तेजित हो गया था। असल बात बताइए न क्या है ? देवधर की जिज्ञासा तीव्र हो उठी।

"देवधर ! असल बात यह है कि उसमें एक प्रस्ताव पारित होने जा रहा है !"

"कौन सा प्रस्ताव ?"

"यही कि पाश्चात्य संगीत लिपि (स्टाफ नोटेशन) को भारतीय संगीतकार स्वीकार कर लें।"

"मगर क्यों?"

"ताकि वे (अग्रेज) पाश्चात्य संगीत को भारत में लोकप्रिय बना सकें।" भातखंडे जी ने इसे और भी स्पष्ट करते हुए कहा कि, "यह एक ऐसा षड्यंत्र है, जिससे भारतीय सगीत की लोकप्रियता समाप्त हो जाएगी।"

"मुझे इसकी पूरी जानकारी है। आप निश्चिंत रहें, हमारे गुरु जी ऐसा नहीं होने देंगे।" देवधर ने कहा।

"मैं भी ऐसा ही सोचता हूँ। परंतु क्लेमेंट साहब बहुत बड़े अफसर हैं। उनके सामने कौन बोल सकता है ? वे, रियासतों के दरबारी संगीतकारों से यह प्रस्ताव आसानी से पास करवा लेंगे। यदि आपके गुरु जी वहाँ उपस्थित रहे तो, ऐसा नहीं होगा। इसका मुझे विश्वास है।"

"इस परिषद् की सूचना हमारे गुरु जी को मिल चुकी है। पं. नारायण राव खरे अहमदाबाद से पत्र द्वारा संपर्क बनाये हुए हैं। वे हमारे बड़े गुरुभाई हैं और अहमदाबाद में गांधर्व महाविद्यालय खोलने की योजना बना रहे हैं।"

"तो आपके गुरु जी ने क्या सोचा है इसके बारे में ?"

"गुरु जी ने श्री खरे को पत्र द्वारा आदेश दिया है कि तुरंत इश्तिहार छपवाकर, शहर में लगवा दो कि विष्णु दिगंबर अपने शिष्यों सहित शीघ्र अहमदाबाद आ रहे हैं। हमारा कार्य इतने ही से सिद्ध हो जायेगा। फिर भी अगर कलेमेंट साहब, संगीत-परिषद् बुलाए तो मैं जरूर आऊँगा।" देवधर ने कहा।

"यह तो बहुत अच्छा किया। वहाँ से कोई उत्तर मिला?" भातखंडे जी ने प्रश्न किया।

"हाँ। श्री खरे ने इश्तिहार छपवाकर लगवा दिये हैं।"

"फिर ?"

"क्लेमेंट साहब को इस बात का पता चल गया है।"

"तुम्हें कैसे पता चला ?"

"मुझे श्री खरे ने पत्र द्वारा सूचित किया है। गुरु जी को भी सारी सूचना मिल चुकी है।"

"अरे देवधर ! पहले क्यों नहीं बताया? बड़े शरीर हो गये हो। बड़ो से भी चालाकी ?" भातखंडे जी ने हँसते हुए कहा।

"क्षमा प्रार्थी हूँ। आप जैसे विद्वान से चतुराई की बात तो मैं सपने में भी नहीं सोच सकता।" देवधर ने कहा।

"फिर बताया क्यों नहीं ?"

"मैं प्रथम आपके विचार जानना चाहता था। दूसरा गुरु आज्ञा का उल्लंघन कैसे करता ? गुरु जी ने कहा था कि जब तक कार्य सिद्ध न हो, इस योजना को गुप्त रखना है।"

"देवधर ! तुम बड़े बुद्धिमान हो। ऐसे शिष्यों से ही संगीत का कल्याण हो सकता है। मेरे विचार तुम्हारे गुरु जी से भिन्न नहीं है"। हम दोनों ही संगीत सेवक हैं। प्रचारक हैं। मैं उनके कार्यो से अत्यंत प्रसन्न हूँ। भातखडे जी ने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी।

"ठीक ऐसे ही विचार हमारे गुरु जी भी आपके प्रति रखते हैं। वे भी हृदय से आपका आदर करते हैं।" देवधर ने कहा।

अपने मानसिक बल और व्यायाम के द्वारा पं. विष्णु दिगम्बर जी कुछ ठीक हो गए। धीरे-धीरे चलने बैठने की शक्ति अर्जित कर ली थी उन्होंने। रोजाना किसी शिष्य को साथ ले कर नदी किनारे सैर को निकल जाते। वहाँ पर बिना लाठी के चलने का अभ्यास करते। वे हठपूर्वक अपने दैनिक कार्यों को करते रहे। शायद इसी कारण वे काफी हद तक स्वस्थ हो गए। चिकित्सक अचंभित थे कि बगैर दवा-दारू के यह चमत्कार कैसे हुआ ?

सन् 1930 की बात है। उन दिनों श्री कृष्ण फिल्म कंपनी ने संत तुलसीदास पर फिल्म बनाने का निश्चय किया। कंपनी वालों के साथ, पंडित जी के शिष्य देवधर का संपर्क था। उनके दो-तीन शास्त्रीय गीत रिकार्ड हो चुके थे। कंपनी को किसी ऐसे व्यक्ति की तलाश थी, जो गायक के साथ-साथ संत तुलसीदास की भूमिका भी अदा कर सके। श्री देवधर ने उसके लिए अपने गुरु जी का नाम सुझाया। कंपनी वालों ने पं. विष्णु दिगंबर जी का संत तुलसीदास की भूमिका के

लिये चुनाव किया। वे राम भक्ति और शास्त्रीय गायक के रूप में विख्यात थे। परंतु उन जैसे धार्मिक और स्वाभिमानी संगीतकार से, इस विषय पर बात कौन करे। यह एक समस्या थी।

कंपनी की तरफ से श्री देवधर को यह काम सौंपा गया कि किसी कीमत पर अपने गुरु जी को इस कार्य के लिये राजी करें। श्री देवधर अपने गुरु जी के पास गये। मगर बात शुरू करने में उन्हें संकोच हो रहा था। इसलिए इधर-उधर की बातें करने लगे। अपने रिकार्डो की बात की। रिकार्डो से बात फिल्मों पर आ गई। फिल्म संगीत के विषय पर बातचीत होने लगी तो गुरु जी उसके गुण-दोषों पर खुलकर विचार करने लगे। उपयुक्त समय और मूड देखकर श्री देवधर ने बात चलाई, "गुरु जी, जब तक आप जैसे प्रवीण संगीतकार फिल्मों में नहीं गायेंगे, तब तक शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता कैसे बढ़ सकती है ?

"मगर मैं फिल्मों में क्यों गाऊँगा ?" गुरु जी एकदम बोले।

"लेकिन इसमें हानि क्या है ?" देवधर ने नम्रता से कहा।

"मैं लाभ-हानि की बात नहीं करता। मेरे कुछ सिद्धांत हैं।—"मैं अश्लील और शृंगारी गीतों के विरुद्ध हूँ। मैं केवल धार्मिक गीतों और लोकगीतों के पक्ष में हूँ।"

"गुरु जी ! मैं आपके सिद्धांतों से भली-भांति परीचित हूँ। और उनका हृदय से पालन भी करता हूँ।"

"फिर भी तुम मुझे फिल्म में गाने के लिए कहते हो ?"

"गुरु जी मैं जो प्रस्ताव ले कर आया हूँ, उससे आपके आदर्शो का कदापि उल्लंधन नहीं होता।"

"अरे देवधर ! मैं भी तो सुनूं। क्या है तुम्हारा प्रस्ताव ?"

"गुरु जी। बात यह है कि श्री कृष्ण कंपनी वालों ने संत तुलसीदास पर फिल्म बनाने का निर्णय लिया है। वे चाहते हैं कि यदि तुलसीदास की भूमिका

आप निभाएं तो बहुत अच्छा हो। अतः मैं कंपनी की ओर से आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप संत तुलसीदास फिल्म को सफल बनाएँ। यह भूमिका आपके विचार, स्वभाव एवं प्रतिभा के अनुकूल भी है।" देवधर ने सारी बात बता दी।

"परंतु इस आयु में, यह सब कैसे होगा ?" पंडित जी हंसकर बोले।

"आप इन बातों की फिक्र न करें। फिल्म वालों के पास हर तरह के विशेषज्ञ होते हैं। आपको वे इस कार्य के लिये पांच हजार रुपये देने के लिए तैयार हैं, जब कि दूसरों को वे इसके लिये दो-ढाई हजार ही देते हैं।"

"ऐसा क्यों"। पंडित जी ने पूछा।

"इसलिये कि आप एक प्रसिद्ध गायक हैं। पूरे भारत में आपका नाम है। दूसरे रामभक्त भी हैं। इन सब बातों से फिल्म को भी तो फायदा होगा। क्योंकि आप संत तुलसीदास की भूमिका को भावपूर्ण ढंग से निभा सकते हैं।"

"परंतु मुझे तो केवल धन-लाभ ही होगा। शास्त्रीय संगीतकार तो यही कहेंगे कि अब बुढ़ापे में विष्णु दिगंबर सठिया गया है।"

"नहीं ऐसी बात नहीं। लोग तो कुछ-न-कुछ कहते ही रहते हैं। मैं तो यह सोचता हूँ कि भविष्य की पीढ़ी आपके दर्शन, संत तुलसीदास के रूप में करेगी और आपका शास्त्रीय गायन भी सुन सकेगी। इससे संगीतकारों का मान बढ़ेगा। संगीत की लोकप्रियता बढ़ेगी। क्या यह महत्वपूर्ण नहीं है?"

"देवधर ! तुम ठीक कहते हो। मैं इसके लिए तैयार हूँ। तुम अपनी कंपनी को बोल दो। मेरे लिये संतोष की बात है कि फिल्मों द्वारा भी उच्च स्तरीय संगीत का प्रचार वि जा सकता है।" पंडित जी ने कहा।

श्री कृष्ण फिल्म कंपनी की शूटिंग आरंभ होते ही रिकार्डिंग-मशीनों में खराबी आ गई। उन दिनों भारत में इन मशीनों को ठीक करने वाले तकनीशियन नहीं थे। बाहर से तकनीशियन आने की प्रतीक्षा होने लगी। छः-सात महीने तक शूटिंग आरंभ होने की संभावना भी नहीं थी।

पंडित जी को पता चला कि अभी फिल्म का काम शुरू होने में देर है, तो उन्होंने 'नेपाल' जाने का कार्यक्रम बना लिया। अतः कुछ दिन बंबई में रहने के पश्चात वे नेपाल चले गए। लेकिन नेपाल का मौसम उन्हें रास न आया। पंडित जी बीमार पड़ गए। वापस निवास स्थान लौट आए।

अंतिम संध्या

जीवन के अंतिम दिनों में पंडित जी अस्वस्थ रहने लगे। शीतल जल से स्नान, 103 डिग्री बुखार में भी रामायण पाठ एवं संगीत-शिक्षा आदि कार्य करते रहे। हठपूर्वक कार्य करने से शरीर अत्यंत दुर्बल हो गया, फिर भी औषधि नहीं लेते थे। दिन-पर-दिन पंडित जी की हालत बिगड़ती गई। मिराज के महाराजा ने अपना शाही चिकित्सक उनकी देख-रेख के लिए भेज दिया, परंतु पंडित जी ने कहा अब उनके लिए राम नाम ही औषधि है।

पंडित जी अस्वस्थ हैं, यह सुनकर अनेक पुराने शिष्य उनके पास पहुँच गए। मुख मंडल पर वही कांति, वही तेज था, परंतु कमजोरी इतनी अधिक थी कि वे उठ कर बैठ भी नहीं सकते थे।

पंडित जी की पत्नी और सुपुत्र दत्तात्रय भी वहीं थे। अनेक श्रद्धालु भी आ गए। पंडित जी ने अपने सुपुत्र की आगे की तालीम की जिम्मेदारी, विनायक राव पटवर्धन को सौंप दी। सभी उपस्थित शिष्यों से वचन लिया कि वे जीवन भर संगीत के उज्जवल भविष्य के लिए कार्य करेंगे। उनके आखिरी शब्द थे,......... ."मुझे अंतिम साँस तक, रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीता राम, की धुन सुनाई देनी चाहिए।"

पंडित जी की अंतिम इच्छा जानकर सभी शिष्य राम-नाम की धुन गाने लगे। आँखों में आंसू, आवाज़ में दर्द, और राम नाम की धुन, कुछ अलौकिक दृश्य था वह। चारों तरफ राम-नाम की धुन गूँजने लगी। समुद्र में उत्ताल तरंगें

उठ रही थीं। ऐसा लगता था, जैसे कोई तूफान आने वाला हो। सागर की लहरें भी उस ध्वनि से आंदोलित प्रतीत हो रही थीं।

तुलसी जयंती के दिन 20 अगस्त, 1931 को पंडित जी ने राम-राम का जाप आरंभ कर दिया। जप करते हुए अनेक घंटे बीत गए। अब वे बोल नहीं सकते थे। मन ही मन जाप करने लगे।

अगले दिन केवल होंठ ही हिलते दिखाई दे रहे थे। आवाज नहीं निकल रही थी। इसी हालत में.........21 अगस्त, 1931 को 9 बजकर 10 मिनट पर, संगीत का लहराता सागर सदा-सदा के लिये शांत हो गया।

प्रसिद्ध इतिहासकार वी.के.राजबाड़े ने अपनी पुस्तकें............"अर्वाचीन भारत के दस उत्कृष्ट महापुरुष" में पंडित विष्णु दिगंबर जी के जीवन और योगदान पर जानकारी दी है। प्रो.वी.आर. देवधर ने अपने गुरु जी पर पुस्तक लिखी है.. गायनाचार्य पं. विष्णु दिगंबर। इसके मुखपृष्ठ पर लिखा है—

"विष्णु दिगंबर भारतीय संगीत में प्रजातंत्र पर्व के शुभारंभ के प्रतीक थे। संगीत, संगीत शिक्षा और महफिलों और राजदरबार, गुरु गृह, राजाश्रय के बंधनों से मुक्ति दिलाने वाले पंडित जी ही थे।"

पंडित जी का नाम संगीत जगत में सदैव अमर रहेगा।

धन्यवाद है उनका कि अब किसी संगीतकार को सर झुकाकर नहीं चलना पड़ता।

पंडित जी के शिष्यों ने गांधर्व महाविद्यालय को अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय मंडल के रूप में पंजीकृत करवाया है। जिसके अंतर्गत विभिन्न शाखाओं को संलग्न किया गया है। निश्चित पाठ्यक्रम के अंतर्गत वर्ष में दो बार परीक्षाएं आज भी होती हैं।

विभिन्न प्रांतीय सरकारों और विश्वविद्यालयों से इसे मान्यता प्राप्त है।

आज गांधर्व मंडल के अंतर्गत 300 से ऊपर संगीत केन्द्र हैं। तीन हजार से

ऊपर संगीत शिक्षक इससे जुड़े हुए हैं। पंद्रह हजार से ऊपर विद्यार्थी प्रीक्षाएं देते हैं। अनेक नगरों में विद्यालयों के अपने भवन हैं। उनकी महान शिष्य परंपरा वटवृक्ष की तरह फैल चुकी है। उनकी तीसरी पीढ़ी के लोग आज भी संगीत सेवा में लगे हुए हैं।

पंडित जी ने अपनी संगीत-लिपि तीन पंक्तियों में निश्चित की थी। परंतु प्रकाशन एवं सरलता के लिए अब उसे एक ही पंक्ति में लिखा जाता है। यह परिवर्तन "गांधर्व मंडल" की ओर से किया गया था। आज इसी लिपि में उनकी पुस्तकें उपलब्ध है।

भारतीय संगीत में आजकल जो संगीत लिपियां प्रयोग की जाती हैं उनके नाम इस प्रकार हैं।

1. विष्णु दिगंवर संगीत लिपि।
2. भातखंडे संगीत लिपि।
3. पाश्चात्य संगीत लिपि (स्टाफ-नोटेशन)।

संगीत लिपि पद्धतियों को अंग्रेजी में "म्यूजिकल नोटेशन सिस्टम" कहा जाता है।

.... विष्णु दिगंबर संगीत लिपि का चिन्ह परिचय :

.... मध्य सप्तक के स्वरों और बगैर किसी चिह्नों के लिखते हैं।

जैसे.......स रे ग म प ध नि

................कोमल स्वरों के नीचे हलंत (टेड़ी रेखा) लगाते हैं।

जैसे.............रे् ग् ग् ध् नि्

..................तीव्र स्वर के लिए उल्टी हलंत लगाते हैं। जैसे : म

............शुद्ध स्वरों को भी बगैर किसी चिन्हों के लिखा जाता है।

जैसे............स रे ग म प ध नि

.............मन्द्र सप्तक के स्वरों के ऊपर बिंदी लगाई जाती है।

जैसे..............निं धं पं मं

..............तार सप्तक के स्वरों के ऊपर खड़ी रेखा का प्रयोग करते हैं।

जैसे.................सं रं गं गं पं

..............दो मात्रा के लिये स्वर के नीचे यह चिन्ह लगाया जाता है।

जैसे.....सु

............एक मात्रा के लिये नीचे सीधी रेखा लगाते हैं।

जैसे........सु रे गु गु पु धु नि सें (सभी स्वर एक मात्रा के हैं)

...........1/2 मात्रा के लिये "जीरो" का चिह्न लगाया जाता है।

जैसे.......स् रे ग् म् प् ध् नि स् (प्रत्येक स्वर आधी मात्रा)

............1/3 मात्रा नीचे अंकों में जैसे स रे ग

अथवा...............सु रे गु लिखा जाता है

...........1/4 मात्रा के लिये नीचे अर्ध चंद्र जैसे.......

.........सु रे गु मु

................1/8 मात्रा के लिये दो अर्ध चंद्र" जैसे............

सु रे गु मु पु धु नि सु

............सम (प्रथम मात्रा के लिये) एक अंक.......।

...............खाली ((धन) जमा का चिन्ह) जैसे.......+ +

...............ताली (ताली वाली मात्रा का अंक) 1, 5, 13,

.........स्वर उच्चारण (अंग्रेजी का एस) अवगृह ऽऽऽऽ

...........शब्द उच्चारण (स्वर के आगे बिंदी) ज.य.ज.य.

...........गौड़ स्वर (ऊपर ब्रैकिट) जैसे.........सं प

..........कण स्वर (ऊपर लिखा हुआ) ......$प_{ग}$ $प_{ग}$

............विश्रांति (कोमा विराम चिह्न) स रे, ग म,

.........ताल को मात्राओं के अंत में सीधी खड़ी रेखा द्वारा विश्राम चिह्न लगाते हैं। जैसे.........।

#______________________# ....परिशिष्ट................

इस परिशिष्ट में पंडित जी की लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण संगीत रचनाओं को यहाँ भातखंडे संगीत लिपि में दिया जा रहा है। ताकि जिन छात्रों को विष्णु दिगंबर संगीत लिपि नहीं आती वे भी इससे लाभ उठा सकें। ये रचनाएं पं. विष्णु दिगंबर जी की पुस्तकों में उपलब्ध हैं। इनसे पंडित जी की गायन शैली को सीखा जा सकता है। इन्हें हारमोनियम अथवा अन्य किसी भी वाद्य के साथ सरलतापूर्वक गाया-बजाया जा सकता है।

....संगीत लिपियाँ..

परिशिष्ट

राग-शंकरा, द्रुतखयाल, तीन ताल

स्थाई– स्वाधीनता के हैं पुजारी।
हमने यही इक टेक धारी।।

अंतरा– परदास्ता की यातना से।
अब मुक्त हो जननी हमारी।।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
								स्थाई –			ग	प	नि	ध	सं
नि	–	–	धर्म	प	ग	–	प	रेग	–	रेस	स्वा	ऽ	धी	ऽ	न
ता	ऽ	ऽ	केऽ	ऽ	हैं	ऽ	पु	जाऽ	ऽ	रीऽ	ऽ	स	ग	ग	प्र
×				2				0				ह	म	ने	ऽ
												३			
त	ग	रेस	स	–	ग	प	नि	पीन	संनि	धप,					
य	ही	इऽ	क	ऽ	टे	ऽ	क	धाऽ	ऽऽ	रीऽ,					
				2				0							
								अंतरा–			प	प	सं	–	सं
											प	र	दा	ऽ	स
												3			
सं	–	–	सं	–	सं	–	सं	निसं	रेंसं	नि,	सं	सं	गं	–	ग
तां	ऽ	ऽ	की	ऽ	या	ऽ	त	नाऽ	ऽऽ	से,	अ	ब	मु	ऽ	क्त
				2				0				3			

रेंगं — रेंसं नि पनि सरें सं नि धमे प गप
होऽ जऽ न नीऽ ऽऽ ऽ ह माऽ ऽ रीऽ
2 0

स्वाधीनता इतने शब्द बोल कर निम्न आलाप लें :

स ग प — रंग रे स,
2 0

स ग प — — — पध मेप नि — धमे प
रे ग — स ग प — रे ग रे स,
X 2 0 3

स ग प नि — — ध सं नि — धर्म प — — प ग
— — स ग प — रे ग रे स —
X 2 0 3

पध मेप सं — — — निसं रेंसं नि — — —
नि संगं — — रेंगे सुरें निसं — नि — — — धमे प ग —
स ग पध मेप ग — — प रेग रे स,
X 2 0 3

ध मेप सं — — — निसं — — — निसं — पनि संगं — —
सं गं पं — गें पं रेंगं — रेंसं — निस रेंस नि — धर्म प
ग प नि ध स नि प गप रेग रे स,
2 0 3

1. 'परदास्तां,' इतने शब्द बोल कर निम्न आलाप लें :

ग प नि ध सं नि धप
2 0 3

2. पनि सरें स — रेंसं नि धप,
3. पनि सगं — — रें गं सरें निरा नि — सं नि
धम प पग — ग प नि ध स नि प,
× 2 0 3

'स्वाधीनता' शब्द बोल कर निम्न बोलतानें लें :

1. सं नि धप ग प ग रे स,
स्वा ऽ धीऽ ऽ न ता ऽ ऽ
2. सरें संनि धप ग प ग — रेस,
स्वा ऽऽ धीऽ ऽ न ता ऽ ऽऽ
3. पनि संगं गरें संनि धप गप गरे स,
स्वा ऽऽ धीऽ ऽऽ नऽ ताऽ ऽऽ ऽ,

'स्वाधीनता' शब्द बोल कर निम्न तानें लें :

1. सग पध पप गप गप गरे स,
2 0
2. सग पध पप विध निध पप गप,
2 0
पनि सरे सनि धप गप गरे स
3. पनि सगं रेंसें निपं गप गरे स,
2 0
सग पध पप निध निध पप गप निसं रेंसं निध:पप निसं
गरें संनि रेंसं निध पप गप निप निप गप गरे स,
× 2 0 3

स्थाई— ठाकुर तुम सरणाई आया।
उत्तर गया मेरे मन का संसा,
जब तेरा दर्शन पाया।।

अंतरा —अनबोलत मेरी बृथा जानी
अपना नाम जपाया।।
— दुख नासे सुख सहज समाये
अमंद अनंद गुण गाया।।
— बाहिं पकड़ लीनी जन अपनी,
गूह अंध कूप ते माया।।
— कहु 'नानक' गुरु बंधन काटे।
बिछरत आन मिलाया।।

नोट— प्रथम अंतरे के स्वरों पर ही शेष अंतरे गाइये।

राग – माँड, द्रुतख्याल, तीन ताल

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
					स्थाई—			ग	म	ग	म	प	प	ध	पध
								ठा	ऽ	कु	र	तु	म	स	रऽ
								0				3			
सं	—	सं	—	निसं	रेंसं	नि	ध	सं	सं	सं	सं	निसं	—	ध	प
णा	ऽ	ई	ऽ	आऽ	ऽऽ	या	ऽ	उ	त्त	र	ग	याऽ	ऽ	मे	रे
X				2				0				3			
प	नि	ध	प	म	ग	रे	स	स	रे	म	म	प	प	ध	पध
म	न	का	ऽ	सं	ऽ	सा	ऽ	ज	ब	ते	रा	द	र	श	नऽ
				२				0				3			

सं — — — निसं रेंस निध —
पा ऽ ऽ ऽ याऽ ऽऽ ऽऽ ऽ
× 2 अंतरा— प प ध पध सं सं सं सं
अ न बो ऽऽ ल त मे री
0 3

सं रें रें सं सरें गं रें सं सं सं सं सं निसं रेंसं ध ध
बि र था ऽ जाऽ ऽ नी ऽ अ प ना ऽ नाऽ ऽऽ म ज
× 2 0 3

प ध ग म गम पध निसं —
पां ऽ ऽ ऽ योऽ ऽऽ ऽऽ ऽ
× 2

ठाकुर तुम शर, इतने शब्द बोल कर निम्न आलाप लें :

1. सरे गम गरे — स रे ग स
× 2

2. सरे मप धपध प म ग रेस
× 2

3. सरे मप ध म — — पध निसं — — निस — निध — पनि धप
म — पध पम ग रे ग स
× 2 0 3

4. सरे मप धसं — — — रेंसं निध — — पनि धप म — — —
पम गरे — — सरे ग स —
2 0 3

5. सरे मप धसं – – – रेंसं निध सं – – – पध सरे गंमं –
गरें – सं रें गं सं – – निसं – निसं रेंसं निध – पनि धप
म – पम गरे – – ग स
× 2 0 3

अंतरे के 'अनबोलते मेरी' इतने शब्द बोल कर आलाप ले :

1. सं – – – रेंसं निध सं –
× 2

2. पध सरें गं स रेंसं निध सं –
× 2

3. पध सरें गमं गरें – सरें गं सं
2

'ठाकुर तुम शर' इतने शब्द बोलकर निम्न बोलतानें लें :

1. ग म प ध पध निसं निध –

2. तु म श र णाऽ ऽऽ ईऽ ऽ
2

प ध सं रें ग रेंस निध –
तु म श र णा ऽऽ ईऽ ऽ
× 2.

3. 'ठाकुर तुम शरणाई आया':– म – प नि ध प म ग
ठा ऽ कु र तु म श र
0 3

सरे ग स – गम पध निसं निध
णाऽ ऽ ई ऽ आऽ ऽऽ याऽ ऽऽ
2

4.

								सं	–	सं	सं	सरें	सनि	ध	प
								ठा	ऽ	कु	ऽ	तुऽ	मऽ	श	र
								0				3			
ग	म	प	ध	पध	निसं	निध	–								
णा	ऽ	ई	ऽ	आऽ	ऽऽ	याऽ	ऽ								
				2											

5.

								ग	म	प	ध	स	सं	ध	पध
								ठा	ऽ	कु	र	तु	म	श	रऽ
सं	–	सं	–	सरें	गं	रेंसं	–	सं	रे	सं	सं	निसं	–	ध	प
णा	ऽ	ई	ऽ	आऽ	ऽ	याऽ	ऽ	उ	त	र	ग	याऽ	ऽ	मे	रे
पनि	धप	म	ग	सरे	ग	रेस	–	स	रे	म	प	ध	सं	रें	गं
मऽ	नऽ	का	ऽ	संऽ	ऽ	साऽ	ऽ	ज	ब	ते	ध	द	र	श	न
सरे	–	निसं	–	धनि	–	पध	–								
पाऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	याऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ								
				2				0				3			

'ठाकुर तुम शर' इतने शब्द बोलकर निम्न तानें लें :

गम पध निसं निध पम गरे स–
2

गम पध निरें संनि धप मग रेस –
2

गम पध संरें गंरें संनि धप मग रेस
2

पध संरें गंम गरें संनि धप मग रेस.
2

राग– काफी, तीन ताल

स्थाई— टेर टेर रसना, थकी हारी।
विनय करे नित ही तिहारी।।

अंतरा — मन मंदिर में नाथ बिराजो।
मिटे व्यथा जिय की अति भारी।।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
					स्थाई—			मप	ध	प	ग	रे	ग	म	म
								टेऽ	ऽ	र	टे	ऽ	र	र	स
								0				3			
प	–	प	म	पध	नि	ध	प	धं	ध	ध	ध	पध	संनि	ध	प
ना	ऽ	थ	की	हाऽ	ऽ	री	ऽ	वि	न	य	क	रेऽ	ऽऽ	नि	त
				2				0				3			
रे	म	प	ध	मप	धप	ग	रे								
ही	ऽ	ऽ	ति	हाऽ	ऽऽ	री	ऽ								
				2	अंतरा —			म	म	प	ध	नि	ध	सं	–
								म	न	मं	ऽ	दि	र	में	ऽ
								0				3			
सरें	गं	रें	स	नि	ध	सं	–	सं	सं	सं	रें	नि	–	ध	प
नाऽ	ऽ	थ	वि	रा	ऽ	जो	ऽ	मि	टे	ऽ	व्य	था	ऽ	जि	य
				2				0				3			
रे	म	प	ध	मप	धप	ग	रे								
की	ऽ	अ	ति	भाऽ	ऽऽ	री	ऽ								
				2											

'टेर टेर रस' इतने शब्द बोल कर निम्न आलाप लें :

1. स — — — नि ध स —
× 2

2. स रे ग रे — मग रे स
× 2

3. स रे म प — — प म ग रे — — रेग मप — —
म ग रे — ग रे स —
× 2 0 3

4. स रे म प — — मप धनि ध प — — मप धप म प
ग रे रेग मग रे — स —
× 2 0 3

5. सरे मप धनि सं — — नि ध सं — — — धनि सरें गं रें
— — गं रें सं — — — निसं रें नि ध प — मप धप
म प ग रे रे मग रे स
× 2 0 3

- 'मन मंदिर में' यह शब्द बोल कर निम्न आलाप लें :

1. मप धनि सं — नि ध सं —
2

2. सरें मंगं रें सं निध पम पध निसं
2

- 'टेर टेर' इतने शब्द बोलकर निम्न बोल तानें लें :

रे म
र स

पध निसं निध म प ग रे
नाऽ ऽऽ थ की हा ऽ री ऽ
2

संरें
र स

2. नि ध प म पध निसं निध प
ना ऽ थ की हाऽ ऽऽ रीऽ ऽ
2

प ध
र स

3. संरें मंगं रें सं नि ध प म
नाऽ ऽऽ थ की हा ऽ री ऽ
2

• 'टेर टेर रस' इतने शब्द बोल कर निम्म तानें लें :

1. सरे मप धनि धप धनि धप मग रेस
2

2. सरे मप धनि सरें सनि धप मग रेस
2

3. सरे मय धनि संनि संनि धप मग रेस
2

4. मप धनि संरें गंरें संनि धप मग रेस
2

5. सरे मप धनि सरें मंग रेंसं निध पम

राग– हमीर, तीनताल

स्थाई– गुरु बिन कौन बतावे वाट। बड़ा विकट यम घाट।।

अंतरा – भ्रांति की पहाड़ी नदिया बिचमो, अहंकार की लाट।।

– मद मत्सर का लोभ बरसत, माया पवन बहे दाट।।

– कहत कबीर सुनो भाई साधो, क्यों तरना इस घाट।।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
स्थाई–				नि	सं	नि	ध	मं	–	प	ध	मं	प	ग	म
				गु	रु	बि	न	कौ	ऽ	न	ब	ता	ऽ	वे	ऽ
				2				0				3			
निध	–	–	ध	नि	रेंसं	नि	ध	ग	म	–	ध	मं	प	म	रे
बाऽ	ऽ	ऽ	ट	गु	रुऽ	बि	न	ब	ड़ा	ऽ	वि	क	ट	य	म
				2				0				3			
गम	धमं	प	ग	ग	म	रे	स	कौन बतावे वाट–							
घाऽ	ऽऽ	ऽ	ट	गु	रु	बि	न								
				अंतरा –				प	–	सं	सं	सं	सं	सं	–
								भ्रां	ऽ	ति	की	प	हा	ड़ी	ऽ
								0				2			
ध	नि	सं	रें	सं	नि	ध	प	मं	प	–	ध	मं	प	ग	म
न	दि	या	ऽ	बि	च	मो	ऽ	अ	हं	ऽ	का	ऽ	र	की	ऽ
				2				0				3			
निध	–	–	ध												
लाऽ	ऽ	ऽ	ट												

- 'गुरु बिन कौन बतावे' इतने शब्द बोल कर आलाप :

1. स – रेग मप ग म रे स
   × 2 0 3
2. सरे गम निध – निध – मेंप – – – पध मेप पग – म रे
   – – रेग मप गम रे स –
   × 2 0 3
3. सरे गम निध – निध – नि – ध – मैप धनि सं नि धमे प
   पग – म – रे – स –
4. सरे गम निध – सं – निसं – – – सं रें – – सं –
   सरें निसं निध – मैप – ग म निध – ध नि – ध मैप –
   ग म प ग म रे स –
   × 2 0 3
5. सरे गम निध – सं – – निसं – – सं रें – – सं –
   सरें गम – – मरे – सं सं सरे निसं निध – मेंप – ग म
   ध – मेप – ग म रे स
   × 2 0 3

अंतरे के शब्द "भ्रांति की पहाड़ी" बोल कर आलाप :

1. सं – निध – निध – स –
   2
2. सं नि ध मैप ग म निध सं
   2
3. सं नि ध मैप ग म निध सं
   2

सरें गम – – रें – सं –
2

4. सरे गमं पं – गं मं रें स
X 2

'गुरु बिन कौन बतावे' शब्द बोलकर बोल कर तानें लें :

1. ग म ध मंप ग म रे स
बा ऽ ऽ टऽ गु रु बि न
2

धनि सरें सं सं नि सं धं प
2. कौऽ ऽऽ न ब ता ऽ वे ऽ
2

3. सरें गमं – रें नि रेंसं निध
बाऽ ऽऽ ऽ ट गु रुऽ बि न
2

4. सरे गम निध – निसं – रेंस निध
बाऽ ऽऽ ऽऽ ऽ टऽ ऽ गुरु बिन
2

5. पध निसं सनि धनि रें निसं नि ध
गुरु बिन कोऽ न ऽब ताऽ वे ऽ
2

6. रेंसं –रें नि संनि धनि –रें संनि धप
गुरुऽबि न कौन बता ऽवे बाऽ टऽ

'गुरु बिन' शब्द बोल कर निम्न बोल तानें लें :

गम निधु सं – सं – सरें निसं निध – मंप – ग म रे स
कौऽ ऽऽ ऽ ऽ न ऽ बऽ ताऽ ऽऽ ऽ बैऽ ऽ बा ऽ ट ऽ
0 3 2

- 'गुरु बिन कौन बतावे' इतने शब्द बोल कर आलाप :

1. स – रेग मप ग म रे स
   × 2 0 3
2. सरे गम निध – निध – मेंप – – – पध मेप पग – म रे
   – – रेग मप गम रे स –
   × 2 0 3
3. सरे गम निध – निध – नि – ध – मैप धनि सं नि धमे प
   पग – म – रे – स –
4. सरे गम निध – सं – निसं – – – सं रें – – सं –
   सरें निसं निध – मैप – ग म निध – ध नि – ध मैप –
   ग म प ग म रे स –
   × 2 0 3
5. सरे गम निध – सं – – निसं – – सं रें – – सं –
   सरें गम – – मरे – सं सं सरे निसं निध – मेंप – ग म
   ध – मेप – ग म रे स
   × 2 0 3

अंतरे के शब्द "भ्रांति की पहाड़ी" बोल कर आलाप :

1. सं – निध – निध – स –
   2
2. सं नि ध मैप ग म निध सं
   2
3. सं नि ध मैप ग म निध सं
   2

सरें गम – – रें – सं –
2

4. सरे गंमं पं – गं मं रें स
× 2

'गुरु बिन कौन बतावे' शब्द बोलकर बोल कर तानें लें :

1. ग म ध मंप ग म रे स
बा ऽ ऽ टऽ गु रु बि न
2

धनि सरें सं सं नि सं धं प
2. कौऽ ऽऽ न ब ता ऽ वे ऽ
2

3. संरें गंमं – रें नि रेंसं निध
बाऽ ऽऽ ऽ ट गु रुऽ बि न
2

4. सरे गम निध – निसं – रेंस निध
बाऽ ऽऽ ऽऽ ऽ टऽ ऽ गुरु बिन
2

5. पध निसं सनि धनि रें निसं नि ध
गुरु बिन कोऽ न ऽब ताऽ वे ऽ
2

6. रेंसं –रें नि संनि धनि –रें संनि धप
गुरुऽबि न कौन बता ऽवे बाऽ टऽ

'गुरु बिन' शब्द बोल कर निम्न बोल तानें लें :

गम निधु सं – सं – सरें निसं निध – मंप – ग म रे स
कौऽ ऽऽ ऽ ऽ न ऽ बऽ ताऽ ऽऽ ऽ बैऽ ऽ बा ऽ ट ऽ
0 3 2